Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

NB-8
11/52
LIBRARY
No.......

जप-साधना

(बंगला से अनुवादित)

प्रणेता :—
पुरीस्थित श्री गोवर्द्धन पीठाधीन योगिराज श्रीमान्
परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १००८ श्री श्री शंकर
पुरुषोत्तमतीर्थ स्वामीजी महाराज

सर्व स्वत्व संरक्षित ।

सन १९५६

सिद्धयोगाश्रम, छोटी गैबी, बनारस ।

मूल्य १॥)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ

11/52

जप-साधना

(बंगला से अनुवादित)

प्रणेता :—

पुरी स्थित श्री गोवर्द्धन पीठाधीन योगिराज श्रीमान्
परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १००८ श्री श्री शंकर
पुरुषोत्तम तीर्थ स्वामी जी महाराज

अनुवादक :—

तच्छिष्य विष्णुतीर्थ

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
मानसं कर्मजं वाग्जं लोके तन्नास्ति कल्मषं ।
सर्वाशुभघ्न-शिवदं यद् हरेर्नामकीर्तनम् ॥

सर्व स्वत्व संरक्षित ।

सन् १९५६

सिद्धयोगाश्रम, छोटी गैबी, बनारस ।

मूल्य १॥)

LIBRARY
No.............

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक
स्वामी नारायण तीर्थ,
सिद्धयोगाश्रम, छोटी गैबी, बनारस

प्रथम संस्करण—१०००

मुद्रक :—
श्री गोविन्दमुद्रणालय
बुलानाला, वाराणसी।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

11|52

समर्पण

मदीय आराध्यदेव पुरिधामस्थ श्री गोवर्धन मठाधीश्वर श्री ११०८ जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य श्री श्री भारतीकृष्ण तीर्थ स्वामीजी महाराज के श्री चरणकमलों में गंगाजल से गंगाजल के पूजन के सदृश यह जप-साधना श्रद्धाञ्जलि-स्वरूप अर्पण करता हूँ।

सिद्ध योगाश्रम,
छोटी गैबी, बनारस
२६-६-१९४१ ई०

एकान्त अनुगत सन्तान,
श्री पुरुषोत्तम तीर्थ।

LIBRARY
No...........
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

LIBRARY
No.............
Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

प्रकाशक का निवेदन

"सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि वसन्ति लोके" परमपूज्यपाद श्रीमच्छङ्कर भगवत्पाद की इस उक्ति के अनुसार मनोलय के बहुसंख्यक साधन प्रचलित होते हुए भी भगवन्नाम-स्मरण एवं जप-साधन सर्वोपरि एवं सर्वसाधारण के लिये सरलसाध्य है। 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' अर्थात् स्वाध्याय में प्रमाद मत करो, श्रुति के युक्त अनुशासन में स्वाध्याय का अभिप्राय मोक्षप्रद शास्त्रों के अध्ययन और भगवन्नाम-स्मरण एवं जप दोनों से है। ऐसी व्यासोक्ति भी है—

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥

भगवन्नामों के जप की प्रणाली सनातन वैदिक धर्म में तो सर्वमान्य है ही, परन्तु अन्य देशों में और अन्य धर्मावलंबियों में भी अपने २ धर्म ग्रंथों के आधार पर भगवान के किसी न किसी नाम अथवा मंत्र का जप किया जाता है।

श्री १००८ गुरु महाराज श्री स्वामी जी की बंगला भाषा में लिखित जप-साधना पुस्तक का प्रकाशन सन् १९४३ ई० में हुआ था। बंगला-भाषी समाज में उसका यथोचित स्वागत हुआ। जप की विधि, नाम-जप का माहात्म्य, जप का भक्ति योग में स्थान और नामनामी का पारस्परिक सम्बन्ध और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नामी की शक्ति का जप-द्वारा प्रादुर्भाव, गुरु-प्रदत्त नाम के जप की आवश्यकता और बिना गुरु से प्राप्त किये जप की व्यर्थता, शक्ति संपुटितनाम या मंत्र, मंत्र-चेतन इत्यादि अनेक रहस्यों का श्री गुरु महाराज ने सरल भाषा में विवेचन किया है। बंगला भाषा न जानने वाले श्री गुरु महाराज के शिष्यों के आग्रह से हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन की सेवा मुझे प्राप्त हुई है, तदर्थ मैं अपने को कृतकृत्य समझता हूँ। और मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी जानने वाले पाठक गण इस से लाभान्वित होंगे। भगवन्नाम-जप द्वारा भगवत्प्राप्ति का द्वार बिना जाति, वर्ण अथवा लिङ्ग भेद के सब के लिये खुला है। जाति पाँति बूझे ना कोइ, हरि को भजै सो हरि का होइ। ईसाई, मुसलमान, और अनेक अन्त्यज जातियों में भक्त होते आये हैं, जिन्होंने नाम-स्मरण की महिमा मुक्त कंठ से गाई है। सत्य है—

हृदय से जिसने पुकारा उसे।
न लगी देर, बस न उबारा किसे?

तथापि श्री भगवान् का यह आदेश भी न भूलना चाहिये कि—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। गीता।

आज कल देखा जाता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के नवयुवक अपने २ कर्तव्योंसे विमुख होते जा रहे हैं। शिखा यज्ञोपवीत का तिरस्कार, संध्या गायत्री से अनभिज्ञता, और अन्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बलि-वैश्वदेव, पितृ कर्म इत्यादि में श्रद्धा का अभाव दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। परन्तु साथ ही यह भी देखने में आता है कि आपत्ति के समय उनके परंपरागत संस्कार देवीदेवताओं के अनुष्ठान, मंत्र तंत्रों की सिद्धि के प्रति उन्हें प्रेरित करते हैं और वे बचपन से अपने वर्णाश्रम धर्मों से अनभिज्ञ रहने के कारण अंधकार में भटकते हैं और 'अंधेन नीयमाना यथान्धाः' के अनुसार अपने ही जैसे धर्म के तत्त्व को न जानने वालों के चक्कर में पड़ कर कहीं के नहीं रहते। मनुस्मृति में कहा है कि जो व्यक्ति अपने संध्योपासनादि नित्यकर्मों से विमुख है, उसका सब यज्ञ यागादि, भजन पूजन निष्फल होता है, अतः हमारा निवेदन है कि जप साधना के साधकों को भी पहले अपना संध्योपासनादि नित्य कर्म करना अनिवार्य है, यदि वे जप से सिद्धि चाहते हैं।

प्रकाशक,

स्वामीनारायण तीर्थ,

सिद्धयोगाश्रम, छोटी गैबी, बनारस।

—:०:—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुवादक का अनुवाक ।

शक्तिः परा वर्णपदमंत्रविग्रहा,
देवात्मिका देहमनसोः प्रभावती ।
उद्बोधिता येन गुरुणानुकम्पया
वंदे सदा तं शिवगुरुं शिवांचताम् ॥

श्री १००८ पूज्यपाद श्री गुरु महाराज स्वामी जी प्रणीत इस 'जप साधना' नामक वंग भाषा के ग्रंथ का हिन्दी जानने वाले पाठकों के लाभार्थ अनुवाद करने का सुअवसर भी परम पावनी भागीरथी के तट पर श्री हृषीकेश (ऋषिकेश) धाम में हिमाचल श्रेणियों के आंचल में बैठकर इस वर्ष प्राप्त हुआ । यह मेरे सौभाग्य की बात है । जप सब साधनों में प्रधान, स्वाध्याय का वास्तविक अंग और इष्टदेव प्राप्ति का मुख्य साधन होने के कारण ही श्री भगवान ने 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' कह कर 'यज्ञो वै विष्णुः' यज्ञ ही विष्णु है, इस उक्ति के अनुरूप जप-साधन को अपना स्वरूप कहा है । सब यज्ञों में श्रेष्ठ जप-यज्ञ साक्षात् भगवत् स्वरूप ही है, इस अभिप्राय से श्री पूज्य स्वामी जी ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि नाम और नामी में किञ्चित् भी भेद नहीं समझना चाहिये । परन्तु जिस नाम अथवा मंत्र का जप किया जाता है, वह शक्ति-संपुटित होना अनिवार्य है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्योंकि भगवान शक्ति से युक्त ही सगुण कहे जाते हैं और नाम अथवा मंत्र उस शक्ति की अभिव्यक्ति कराने वाला स्थूल रूप है। इतना बुद्धिगत होने पर यह समझने के लिये अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं कि शक्ति-संपुटित नाम अथवा मंत्र की प्राप्ति किसी ऐसे ही सामर्थ्य वाले शक्ति-संपन्न गुरु से होनी संभव है, जो अपनी शक्ति दूसरे को प्रदान कर सकता है और ऐसा ही गुरु गुरु कहलाने का अधिकारी भी है। नहीं. तो इस युग में 'कंठी बांधा और कान फूंका' गुरुओं का अभाव नहीं, जो शिष्यों को अपनी आजीविकार्थं वृत्ति बनाकर गुरु-पद को बदनाम करते हैं और इसीलिये आजकल गुरु करना एक ढकोसला और लज्जा की बात समझी जाने लगी है। सच पूछो तो क्या विना गुरु किसी ने कभी कोई विद्या प्राप्त की है? क्या स्कूलों के मास्टर या कालिजों के प्रोफेसर गुरु-पद-वाच्य नहीं? फिर ब्रह्म-ज्ञान-प्रदा परा-विद्या जैसी गुप्त और श्रेष्ठ आध्यात्मिक विद्या का बिना गुरु के प्राप्त होना कैसे संभव है? जो मनुष्य उस आध्यात्म-विद्या के पथ पर शिष्यों को आरूढ करने का सामर्थ्य रखता है, उस को गुरु कहना, उसकी सेवा करना, उसके चरण छूकर उसका सन्मान करना क्या लज्जा की बात है? ऐसे समर्थ गुरु के प्रति भक्तिभाव भी स्वतः हृदय में अनायास उत्पन्न होना स्वाभाविक है, क्योंकि प्रेम, भक्ति, सेवा तो किसी से अनुग्रह पाकर अनुगृहीत होने के लक्षण ही तो हैं। जो अनुगृहीत ही नहीं, उसकी श्रद्धा, भक्ति, सेवा इत्यादि तो एक रूखा बाह्य लोकाचार मात्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। जो भाग्यशाली स्त्री-पुरुष किसी समर्थ गुरु के कृपापात्र बनकर अनुगृहीत होते हैं, उन्हें गुरु में भक्ति पैदा करने के लिये गुरु-भक्तों के दृष्टान्त पढ़ने की कोई अपेक्षा नहीं। जिस क्रम से गुरु अपनी शक्ति का शिष्य में मंत्र, स्पर्श अथवा अवलोकन द्वारा संचार करता है, उसे शक्तिपात-दीक्षा कहते हैं। ऐसी दीक्षा में गुरु-प्रदत्त नाम अथवा मंत्र-जप से शिष्य की आध्यात्मिक शक्ति कुण्डलिनी का क्षणों में जागरण हो जाता है और उसी को मंत्र-चेतन होना कहा जाता है और यही क्रम मंत्र-चैतन्य के नाम से विख्यात है। वर्षों जप करते करते बीत गये और जहाँ के तहाँ बने हैं, यह बात शक्तिपात-दीक्षा में नहीं। इतना जान लेने के पश्चात पाठक स्वयं इस सिद्धान्त को बिना आपत्ति स्वीकार कर लेंगे कि ईश्वर, उसकी अनुभव में आनेवाली शक्ति, उस शक्ति को जगानेवाला शक्ति-संपुटित चेतनस्थूलदेहस्वरूप नाम अथवा मंत्र और ऐसे मंत्र का उपदेश करने वाला गुरु, चारों एक ही हैं और एक शिवजी के बाह्य भेद मात्र हैं।

दूसरे अध्याय में श्री पूज्य स्वामीजी ने मंत्र-विज्ञान का रहस्य वाणी के उच्चारण करने के स्थान कंठ, तालु, ओष्ठ (होंठ) आदि स्थानों के आधार पर समझाया है। यहाँ पर 'शारदा तिलक' एक तंत्र शास्त्र के अनुसार वर्णमाला का ईडा, पिंगला और सुषुम्ना तथा पांचों तत्वों के साथ संबंध दिखाया जाता है। नीचे दिये नक्शे (Table) में तीनों का संबंध एक साथ आसानी से दिख सकेगा। व्याकरणाचार्य महर्षि पाणिनि ने भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अ इ उ ण आदि इस प्रथम सूत्र में जो क्रम दिया है, वह भी शारदा तिलकोक्त तत्त्वों के क्रमानुसार प्रतीत होता है। क्योंकि जप का पंच-भौतिक देह से गहरा संबंध है और शारीरिक क्रियाएँ जो शक्ति के जागने पर कंपादि के रूप में प्रकट होती हैं, पांचो तत्त्वों, तीनों, ईडा पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों और साथ ही षट्चक्रों से संबंध रखती हैं और सब चक्र भी तत्त्वों से संबंधित हैं अतः वर्णमाला का इन से संबंध समझना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

शारदा तिलक पटल से उद्धृत श्लोक :—

एषु स्वराः स्मृताः सौम्याः स्पर्शाः सौराः शुभोदयाः।
आग्नेया व्यापकाः सर्वे सोमसूर्याग्निदेवताः ॥ (२, २)
ह्रस्वः स्वरेषु पूर्वोक्तः परोदीर्घः क्रमादिमे।
शिवशक्तिमयास्ते स्युर्विन्दु सर्गोवसानिकाः ॥ (२, ३)
तत्त्वात्मानः स्मृताः स्पर्शाः मकारः पुरुषो मतः।
व्यापका दशैते कामधनधर्मप्रदायिनः ॥ (२, ४)
विन्दुः पुमान् रविः प्रोक्तः सर्गः शक्तिर्निशाकरः।
स्वराणां मध्यमं यच्च चतुस्र तच्च नपुंसकम् ॥ (२, ६)
पिंगलायां स्थाह्रस्वाः ईडायां संगताः परे।
सुषुम्णायां मध्यगाज्ञेयाश्चत्वारो ये नपुंस्काः ॥ (२, ७)
वाय्वाग्निभूजलाकाशाः पंचाशल्लिपयः क्रमात्।
क्रमादयः पंचश ष क्ष ळ स हान्ताः प्रकीर्तिताः ॥ (२, ८)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थ—इन (वर्णों) में स्वर सौम्य (चंद्र के), स्पर्श सूर्य के, और व्यापक वर्ण य र ल व ष स ह आग्नेय हैं, इस प्रकार सब वर्ण क्रमशः चन्द्र सूर्य और अग्नि देवताओं से संबंध रखते हैं।

स्वरों में पहला ह्रस्व, दूसरा दीर्घ क्रम से शिव शक्तिमय हैं, विन्दु शिव और विसर्ग शक्ति। स्पर्श वर्ण तत्त्वों से संबंधित कहे जाते हैं, मकार को पुरुष माना गया है। दसों व्यापक काम धन धर्म देने वाले हैं, विन्दु को पुमान् और सूर्य कहा जाता है, विसर्ग को शक्ति और चन्द्रमा। स्वरों के मध्य चार ए ऐ ओ और औ नपुंस्क हैं। ह्रस्व पिंगला में, ईडा में दीर्घ और सुषुम्ना में चारों नपुंस्क स्थित हैं। ५० लिपि के स्वर वर्ण क से म तक और श ष ळ स ह सहित पांच पांच क्रमशः वायु, अग्नि, पृथ्वी जल और आकाश से संबंध रखते हैं।

ईडा, पिंगला और सुषुम्ना क्रमशः सोम सूर्य और अग्नि की नाड़ियाँ हैं। इससे स्पष्ट है कि ॐ ऐं, ह्रीं, श्रीं, रां, राम, हरिः, शिव, ईश, ईश्वर, ईशान, हूँ, स्वाहा, प्रभृति नामों के अक्षर सुषुम्ना में स्थित वर्ण है, और उनका जप सुषुम्ना में प्राणों का उत्थान करने में सहायक होना चाहिये।

वर्ण-विज्ञान और मंत्रों के रहस्य पर अधिक जानकारी के लिये अनुवादक लिखित अंग्रेजी की पुस्तक (Divine Power) अर्थात् 'देवात्म शक्ति' देखें।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

नीचे शार्दातिलक के अनुसार वर्ण माला का पांचों तत्वों, छःओं चक्रों, और ईडा, पिंगला, और सुषुम्ना तीनों नाडियों से संबंध एक नकशे (chart) द्वारा दिखाया जाता है।

पंच महाभूत	षट् चक्र														
	विशुद्ध			अनाहत			मणिपूर			स्वाधिष्ठान		मूलाधार		आज्ञा	गुरु चक्र
वायु	ह्रस्व अ	दीर्घ आ	ए	क्	च्	ट्	×	त्	प्	×	य्	×	ष्	×	×
अग्नि	इ	ई	ऐ	ख्	छ्	ठ्	×	थ्	फ्	×	र्	×	×	क्ष्	×
पृथिवी	उ	ऊ	ओ	ग्	ज्	×	ड्	द्	×	ब्	ल्	×	×	×	ळ्
जल	ऋ	ॠ	औ	घ्	झ्	×	ढ्	ध्	×	भ्	×	व्	स्	×	×
आकाश	लृ	ॡ	अं	ङ्	ञ्	×	ण्	न्	×	म्	×	श्	×	ह्	×
लिंग	पुमान्	स्त्री	नपुंसक	०											
नाडी	पिंगला	ईडा	सुषुम्ना												
	ईडा (चन्द्र)			पिंगला (सूर्य)						सुषुम्ना (अग्नि)					
वर्णभेद	स्वराः			स्पर्शाः						व्यापिकाः					

अनुस्वार = पुमान्, विसर्ग = शक्तिः

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चतुर्थ अध्याय में श्री पूज्य स्वामी जी ने सब नामों में एक ही अखंड परम तत्त्वका समन्वय दिखा कर हिन्दू जाति ही नहीं वरन समस्त मानव समाज का हित किया है। जब कि एक धर्मावलंबी दूसरे से और एक ही धर्म का एक संप्रदाय अन्य से धर्म के नाम पर शिर-फोड़ाफोड़ी करता है और द्वेष भरे भावों को उत्तेजना देकर प्रेम एवं आनन्दस्वरूप भगवान की सुन्दर सृष्टि को असत्य और अशान्ति का घर बना रहा है। राम, कृष्ण, काली, दुर्गा, गणपति, शिव अल्लाह खुदा, गौड सब एक ही परब्रह्म परमपिता के नाम हैं, जो व्यक्ति इन में भिन्नता समझता है और और भेद भाव रखता है, वह द्वेष का बीज बोकर उस विश्वेश्वर के क्रोध का पात्र बनता है और उस व्यक्ति की उपासना संकीर्ण होने से उस तक नहीं पहुँच सकती, वरन उसके अधःपतन का ही कारण बन सकती है।

पुस्तक के परिशिष्ट भाग में श्री पूज्य स्वामी जी ने कुछ पौराणिक गुरु-भक्तों की गाथायें दी हैं, उनके दृष्टान्तों का एक पक्ष यद्यपि गुरु-भक्ति की पराकाष्ठा दिखाता है, परन्तु दूसरा पक्ष गुरु का पाषाणवत् कठोर हृदय भी सिद्ध करता है। उपमन्यु और वेद के समर्थ गुरुदेव धौम्य ऋषि की कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर गुरु के आशीर्वाद मात्र से सर्व-विद्या-संपन्न होने का समय आने से पूर्व ही न जाने कितने शिष्य हताश होकर विद्या-शून्य हो लौटे होंगे। बिना भोजन सेवा करने की कठिन तपस्या से इस दिन का शिष्य तो पहले

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही दिन भाग जायगा, और एकलव्य की तरह यदि गुरु-दक्षिणा में अँगूठा कटवाने की नौबत आई तो भगवान ही रक्षा करें, न जानें क्या होगा। आज तो spare the rod and spoil the child अर्थात् डंडे का प्रयोग न करके बालक को बिगाड़ने वाले प्राचीन कालीन सिद्धान्त का सर्वथा परित्याग करके सप्रेम शिक्षा पद्धति का प्रचार किया जा रहा है। अस्तु! तथापि पाठक यह न समझें कि ऋषि धौम्य और आचार्य द्रोण का हृदय दया और प्रेम जैसे दिव्य गुणों से शून्य था। उनका व्यवहार यद्यपि कठोर दिखता है, परन्तु वह स्वार्थ को लेकर अथवा क्रोधवश बिना विशेष अभिप्राय के नहीं था। उपमन्यु पुराणोक्त कथा के अनुसार अधिक खाने वाला, आलसी और उदरपरायण होने के कारण मूढ-बुद्धि था, जो भूख को थोड़ी देर भी सहन नहीं कर सकता था। गुरु महाराज ने उसको इन दोषों से मुक्त कराने और उस युग के जीवन-स्तर के अनुकूल तितिक्षा एवं सहनशक्ति बढ़ाने, क्षुधा सहन करने का अभ्यास कराने एवं उपार्जन करके आजीविका करने की शिक्षा देने के अभिप्राय से ऐसी नीति अपनाई होगी। एकलव्य के प्रति जो व्यवहार किया गया, उसका अर्थ केवल अर्जुन की मान मर्यादा की रक्षा करना ही न था, किन्तु एकलव्य-निषाद एक ऐसी जाति से सम्बन्ध रखता था, जिसका पेशा लूट मार करना और डाके डालना था, उसके हाथ में धनुर्विद्या का होना अपराधों को प्रोत्साहन देना था, इसीलिये उसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनधिकारी समझ कर पहले ही दीक्षा देने से इनकार कर दिया गया था और ज्ञात होने पर उसे दण्ड के तौर पर नहीं, परन्तु अपराधों को रोकने के लिये एक राजगुरु को ऐसा करना उचित हुआ। आज भी कुछ जातियों को मुजरिम पेशा (Criminal Tribes) ठहरा कर जनरक्षार्थ सरकारों को प्रतिवन्ध लगाने पड़ते है। साथ ही यह भी लक्ष्य देने की बात है कि एकलव्य के निषाद जातीय भील लोग आज भी अँगूठा न लगा कर अच्छी तीर अंदाज़ी करते हैं, यह विद्या-कौशल जाति परमपरागत उनमें एकलव्य की ही देन है।

एक प्रश्न उटता है कि क्या प्रचीन आर्य-जाति की पतिव्रता साध्वी स्त्रियों में ऐसी हीन चरित्रा स्त्री को भी स्थान था, जो ऋतुमती होने पर अपने पति की अनुपस्थिति में किसी अन्य पुरुष से और फिर एक पुत्रवत् शिष्य से वीर्यदान की इच्छा करे और फिर उसके पति महर्षि वेद का उस पर इतना स्नेह कि गुरु दक्षिणा पूछने के लिये उस उत्तङ्क सिष्य को उसी के पास भेजा जाय। वास्तविकता यह थी कि उत्तङ्क एक समावर्तन के योग्य नवयुवक ब्रह्मचारी था, जिसकी रक्षा में गुरुदेव अपना सारा घर सौंप कर बाहर चले गये थे, ऐसी अवस्था में गुरुकुल की स्त्रियोंने बुद्धिमत्ता से उत्तङ्क के चरित्र की परीक्षा की थी।

नारायण कुटी,
देवास-मध्य भारत।

अनुवादक,
विष्णुतीर्थ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषय-सूचीपत्र

विषय	पृष्ठाङ्क
१. मानव उद्देश्य तथा उसकी प्राप्ति का उपाय	१
२. नाम जप से लाभ।	१४
३. नाम-माहात्म्य-वर्णन।	२५
४. सब नामों में एक ही अखंड तत्व।	४३
५. जप-विधि	५०
६. भक्ति का स्वरूप	५४
७. गुरु करने की आवश्यकता	७०
८. गुरु भक्ति, श्रीगुरु और ईश्वर में अभेद	७५
९. भक्ति के लक्षण	९०
१०. गुरु भक्तों के दृष्टान्त :—	९८
(१) आरुणि	१००
(२) उपमन्यु	१०२
(३) वेद	१०६
(४) उत्तङ्क	१०७
(५) सत्यकाम	११७
(६) तोटकाचार्य	२४१
(७) एकलव्य	१२९

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	३	माह	मोह
११	६	ध्यानादि	ध्यानादि
२६	१८	माम	भाग
३२	२१	कच्चन	कश्चन
५४	७	उदय है	उदय होता है
५६	१५	गुरुरपदिष्ट	गुरूपदिष्ट
६३	१६	भगद्भावमात्मनः	भगवद्भावमात्मनः
६७	१२	भवेच्ज्ञनमतीव	भवेच्ज्ञानमतीव
७२	१७	श्वेत्तरो	श्वेतरो
७४	१०	शिष्यरन्ये	शिष्यैरन्ये
७८	७	से ईश्वर	से गुरु ईश्वर
८२	२२	श्र	श्रद्धा
८८	२१	श्रायोद	आयोद
८८	२१	द्वे	वेद्
९१	५	इसयथो	इसत्यथो
९३	२०	भावाङ्करे	भावाङ्कुरे
१०५	६	उपकन्यु	उपमन्यु
१०६	४	के	से
११३	१२	इस	यह
१२२	६	मद्गुरू	मद्गु
१२४	३	श्रति	श्रुति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

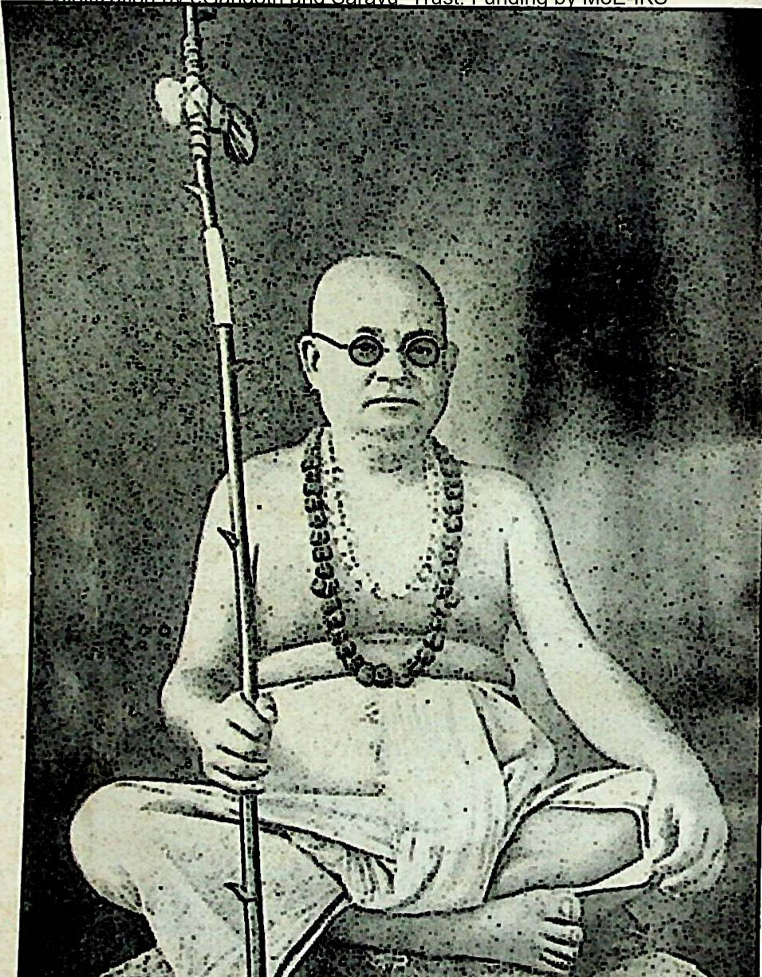

श्री पुरी गोवर्द्धनमठाधीन

परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री श्रीशंकर पुरुषोत्तम तीर्थ स्वामीजी महाराज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

11|5२

जप साधना

आधार कमलसंस्था, निद्रिता नर दुःखदा।
येन प्रबोधिता माता, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
शिष्याणां मोक्षदानाय, लीलया देहधारिणे।
सदेहेऽपि विदेहाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
येन कृपावलोकेन, नाशितं मोह बंधनम्।
प्रापितश्च ज्ञानानन्दस्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

मानव-उद्देश्य

तथा

उसकी प्राप्ति का उपाय

वत्स, मरुभूमि में प्यासे मृग की तरह इस संसार-चक्र में मनुष्य जो बार २ मारा २ फिरता है, उसका कारण क्या है? जीव इस लोक में जन्म लेता है, मरता है, परलोक गमन करता है और फिर इस लोक में लौट कर आता है, इसी प्रकार चक्रनेमि के सदृश बार २ घूमता रहता है। इस आवागमन का हेतु क्या है? इस प्रकार दो चार जन्म नहीं, शत सहस्र जन्म नहीं,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लाखों २ जन्म जन्मान्तर में पड़ा हुआ मोह से ठगा हुआ, कामना का ताड़ा हुआ और वासनासे प्रेरित अतृप्त मन वाला मनुष्य असीम अनन्त काल के प्रवाह में बहता २ कितने देह धारण करता है और कितने देहका त्याग करता है। किन्तु हाय! तो भी उसकी वासना की तृप्ति नहीं होती, क्यों? वह जो चाहता है, वह मिलता नहीं, इसलिए उस की वासना भी पूर्ण होती नहीं, तृप्त होती नहीं। इसी लिए तो वासना के वश नाना विध कर्म करके इधर उधर—स्वर्ग, मर्त्य, अन्तरिक्ष और नरकादि अनेक लोकों में घूमता फिरता है, तथापि उसके घूमने का अन्त नहीं आता। उसके हृदय की आकाङ्क्षायें, उसके चित्त की तृष्णा मन की मन में ही रह जाती है। जिस वस्तु की खोज करता है, उस की खोज करके भी उसका संकल्प पूर्णकाम नहीं होता और इप्सित वस्तु को पाकर समझता है कि अभी और भी प्राप्तव्य कुछ है। हाय! मनुष्य शुभाशुभ वासना के वश शुभाशुभ पुण्य-पापमय नाना विध कर्म करके किस २ योनि में भ्रमण करता है, कितने ही सुखदुःखादि भोग भोगता है, तो भी उस की आकाङ्क्षायें नहीं मिटतीं, हृदय की आकाङ्क्षा हृदय में ही रखकर नीरव हृदय से जिस वस्तु की टोह में है, उसकी खोज तक नहीं पाता। इच्छित वस्तु की खोज करते २ धातु, पत्थर, उद्भिजादि कृमि कीट सरीसृपादि, अनेक प्रकार के पक्षिगण, गो, वानरादि पशुयोनि एवं मनुष्य, यक्ष, राक्षस गंधर्व और देवता प्रभृति नीच और उच्च कितने ही देह धारण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किये हैं और कितनी ही दुःख यातनायें भोगी हैं, तो भी वह क्या चाहता है, किस वस्तु की खोज में है, यह जानकर भी मोह के वश उस के समझने में असमर्थ है। मनुष्य जो चाहता है, जिस वस्तु की खोज में है, उस को वह वस्तु यदि मिल जाती तब तो उस का उद्देश्य पूर्ण हो जाता, जन्म मृत्यु के चक्कर से सदा के लिये छूट जाता और शाश्वत शान्ति प्राप्त करके धन्य २ हो जाता।

हे वत्स, एक बार विचारपूर्वक तो देखो कि यह हतभाग्य मनुष्य किस उद्देश्य से स्त्री पुत्र धनादि में आसक्त होकर उन स्त्री पुत्र और धनादि के कारण ही इतना दुःख, इतना संताप भोगता रहता है, फिर वह नाम, यश और प्रतिष्ठा की आशा से क्या २ नहीं करता, और फिर उस के बदले में पाता है क्या ? गर्भवास का महान् कष्ट। वह वेद वेदांगादि नाना शास्त्रोंका अध्ययन करने में कितना समय और परिश्रम लगाता है और उस के बदले में पाता है क्या ? पांडित्य का मदांध अभिमान, जिससे वह सर्वदा बिच्छू के डंक के सदृश यातना ही भोगता है। यातना की शान्ति के निमित्त, दीर्घ दुःख के नाश के निमित्त, चिर शान्ति की प्राप्ति की आशा से नाना प्रकार की चेष्टायें क्या मनुष्य नहीं करता ? किन्तु उस के दुःख की वृद्धि ही होती है, कमी नहीं।

मनुष्य तो दुःख चाहता नहीं, फिर उस को इतना दुःख क्यों ? हे हतभाग्य जीव, तू दूध की आशा से सुरा पात्र को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मुख से लगा कर सुरापान करके आज घोर उन्मत्त, हिताहित-ज्ञान-रहित और विचार-बुद्धि-हीन हो गया है। आज तू अमृत की आशा से मृत्यु को ग्रहण करके महा दुर्दशा में पड़ा है। ...

तू मोह के वश में होने के कारण इस मरणशील हाड़ मांस के पिंजर में "अहम्" और "मम" का अभिमान करके इतना दुःख और कष्ट भोगता है, तेरा यह मोह ही तो तुझे तेरे स्वाभाविक निजबोधरूप अमृत के स्वाद से वंचित कर रहा है। तू चाहे कितना भी चाहे कि दुःख न हो, परन्तु दुःख तुझे किसी काल में नहीं छोड़ता। तुझ को जो दुःख की चाह नहीं है, उसी से तुझ को समझना चाहिये कि तेरा उद्देश्य सच्चे आनंद की प्राप्ति है, अर्थात् उस सुख की प्राप्ति है जहाँ दुःखोंका स्पर्श तक नहीं। मनुष्य संसार में स्त्री, पुत्र, मित्र, वित्त और संपदादि के होते हुए भी सदा सुख की जगह इतना दुःख पाकर जर्जरित होता रहता है। एक वस्तु को सुख की आशा से ग्रहण करता है, दूसरे ही क्षणमें अति मानसिक कष्ट पाता है, पर फिर भी थोड़ी देर पीछे उसी से सुख की आशा कर फिर उसी दुःखदायी वस्तु को दृढ़ता पूर्वक पकड़कर वैसे ही मतवाला हो जाता है जैसे कुत्ता सूखी हड्डी चबाकर उसी में मस्त रहता है। इसका क्या कारण है? मोह ही है। स्वरूपोपलब्धि, मुक्ति-प्राप्ति और ईश्वर का साक्षात् कराने में सुसमर्थ इस उत्तम नर देह को पाकर भी मोहने तुमको पशु से भी अधम पशु बना रक्खा है। यह मोह ही तुमको यह विचार नहीं करने देता कि इस अनित्य वस्तु में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस नश्वर दृश्य-प्रपंच में, नित्य सुख अर्थात् नित्य शान्ति, नित्यानन्द पाया नहीं जा सकता। जिसकी उत्पत्ति है उसका नाश भी अवश्य है, जिसका नाश होना है वह तो मृतक है ही और उसका आश्रय लेकर क्या कोई कभी शान्ति पा सका है, पाता है अथवा पाएगा ? कहो तो रे मनुष्यो ! मोह में पड़कर तुम्हारी श्रवण शक्ति भी बधिर हो गयी है, इसी लिये तो तुम "भूमैव सुखं, नाल्पे सुखमस्ति' श्रुति की इस महती वाणी को नहीं सुनते। जिस वस्तु का नाश नहीं, जो वस्तु भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों में एक रूप रहती है, जो वस्तु देश, काल और पात्रादि द्वारा परिच्छिन्न नहीं, जिस की अपेक्षा कुछ भी बड़ा नहीं, वही भूमा कहलाती है। वह भूमा अर्थात् ब्रह्म ही सुख स्वरूप है और जिसका नाश होता है, जो समय-समयपर बदलता रहता है, जो देश कालादि द्वारा परिच्छिन्न है, वही अल्प है, और अल्प में अनित्य दृश्य-प्रपंच के अस्थायी नाशशील विषयों में सुख की आशा कहाँ ? सुख की आशा से उसका आश्रय लेने से केवल दुःख ही भोगना पड़ता है। उपनिषद् में कहा है "यो वै भूमातत्सुखं नाल्पेसुखमस्ति। भूमैव सुखं, भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति" (छान्दोग्य)। जो भूमा अर्थात् महान् और नित्य है, वही सुख स्वरूप है। इसी प्रकार जो अल्प अर्थात परिच्छिन्न अतः नश्वर अर्थात् विकारवान्-नाशशील है, उसमें सुख नहीं। वह भूमा ही, वह महान् सुख स्वरूप ही, आनन्दस्वरूप है। इसलिये यदि आनन्द की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इच्छा है तो उस भूमा को ही जानने के अभिलाषी बनना चाहिये।

वत्स! "यत्र नान्यत् पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति स भूमा, अथ यत्रान्यत् पश्यति, अन्यच्छृणोति, अन्यद्विजानाति तदल्पम्। यो वैं भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।" अर्थात् जहाँ अपने से पृथक अन्य पदार्थ का दर्शन, श्रवण, या प्रतीति न हो वही द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, श्रोता-श्राव्य-श्रवण, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान इत्यादि त्रिपुटी-भेद रहित शाश्वत भूमा है। और द्रष्टा जहाँ अविद्या के वश अपने से पृथक अन्य पदार्थ का दर्शन श्रवण, और प्रतीति करता है वही अल्प अचिरस्थायी है। जो भूमा है, वह अमर है, जो अल्प है, वही मर्त्य अर्थात् मरणशील है।

नित्य शान्ति स्वरूप, सुख स्वरूप भूमा का त्याग करके अल्प में, इस अनित्य नाम रूपात्मक सांसारिक विषयों में, उस निरतिशय आनन्द का भोग चाहते हो, उसका स्वाद चखने की इच्छा करते हो, इसी लिये तो रे मूढ़! तुम अपनी असली शान्ति से च्युत होकर बार बार केवल दुःख ही भोगने के लिये जन्म लेते हो, मरते हो। क्या नहीं सुना है कि अर्जुन को निमित्त करके जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था—'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।' इस अनित्य और सुख-लेशहीन मर्त्यलोकमें आकर अर्थात् मरणशील संसार में रहकर सच्चिदानन्द स्वरूप मुक्त आत्मपुरुष का भजन और मेरी ही उपासना कर। श्रीभगवान के इस महान उपदेश को तुम नहीं सुनते और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस दृश्य-प्रपञ्च को देखते देखते कि यह सदा नाश होता रहता है, तुम्हारे मन में इन नाशशील सांसारिक विषयों के प्रति वितृष्णा नहीं उदय होती, और मोह के पाश शिथिल नहीं पड़ते। यही तो है तुम्हारा अविवेकरूपी महा अनिष्टकारी बड़ा पाप।

इस अविवेक ने ही तुम को नित्यानित्य वस्तु-विचार से दूर रखकर रस्सी से बँधे पशु के सदृश मोहपाश से बाँधकर इस दुःखपूर्ण संसार सागर में डुबा रक्खा है। इस अविवेक का ही नाश करो, तब वैराग्य उत्पन्न होकर क्रमशः बढ़ने लगेगा। इसके लिये नित्यानित्य वस्तु का विचार करना चाहिये।

हे वत्स! अज्ञानके प्रबल होनेसे तुम में अविवेक और अविचार की उत्पत्ति हुई है। जैसे रज्जु संबंधी अज्ञान रज्जु में सर्प की भ्रान्ति उत्पन्न करके मनुष्य की कितना भय देता है, वैसे ही आत्मा संबंधी अथवा ब्रह्म विषयक अज्ञान भी तुम्हारी विवेक बुद्धि को मार कर नित्य आत्मा में अनित्य बुद्धि एवं अनित्य देहादिक में नित्यकी भावना उत्पन्न करके तुम को सदा "मैं" और "मम" के मोह-सागर में डुबा कर नानाविध दुःख देता है। अनात्म देहादि तुम नहीं हो, और अनात्म देहादि तुम्हारे भी नहीं हैं। विचारके अभाव-वश उन्हीं अनात्म देहादि को 'मैं' और 'मेरा' मान कर तुम अज्ञान के बन्धन को दृढ़ से दृढ़तर करते हो। परम पिता परमेश्वर में तुम्हारी भक्ति नहीं, परम पिता परमेश्वर विषयक तुम को ज्ञान नहीं, इसी से तुम्हारा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अज्ञान अविवेक बढ़ता फलता फूलता है। त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद् में कहा है—"कस्मादज्ञानप्राबल्यमिति ? भक्तिज्ञानवैराग्यवासनाभावाच्च।" अज्ञान की प्रबलता होने का कारण क्या है ? भक्ति, ज्ञान और वैराग्यजन्य संस्कारों के अभाव वश अज्ञान की प्रबलता होती है। वत्स ! जिस दिन माता के गर्भ में नवें मास स्वकीय पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्म स्मरण करके महान दुःख झेल रहे थे, तब गर्भ यातना से कातर हो कर उस समय के दुःख का प्रतिकार करने का उपाय न देख कर, प्रभु की शरण में जा कर क्या तुमने अपने मन में यह प्रतिज्ञा नहीं की थी—

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणं।
अशुभक्षयकर्तारं फल - मुक्ति - प्रदायकम्॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्सांख्यं योगमभ्यसे।
अशुभक्षयकर्तारं फल - मुक्ति - प्रदायकम्॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम्॥

गर्भोपनिषत्

अर्थात् यदि मैं इस योनि से उद्धार पाऊंगा अर्थात् योनि से बाहेर हो जाऊंगा तो पाप नाशक और फल-मुक्ति-दाता श्री महेश्वर की शरण लूंगा, यदि मैं इस योनि से छूट जाऊँगा तो पाप नाशक फल और मुक्ति के दाता नारायण की शरण लूंगा, यदि मैं इस योनि से उद्धार पाऊँगा, तो पाप-नाशक और मुक्ति-प्रदायक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञान और सांख्य योग का अभ्यास करूंगा। यदि मैं इस योनिसे छूट जाऊँगा तो नित्य सनातन ब्रह्म का ध्यान करुंगा। हे वत्स! क्या तुमने अपनी उस प्रतिज्ञा की रक्षा की, जिसकी कृपा से तुमने भीषण गर्भयन्त्रणा से दुःसह नरकके भोग से रक्षा पाई है? जिसकी कृपा से तुम मुक्त हुए हो, क्या उसकी शरण में जाकर उसका नाम स्मरण और उसका ध्यान किया है? क्या तुम्हारी उस में भक्ति है? उसका तत्त्व जानने की जिज्ञासा कहाँ है?

हाय! न तुमने किया ज्ञान का विचार, न किया है योगाभ्यास। तुम अशुभक्षयकारी मुक्तिदाता महेश्वर और नारायण की शरण में जाकर उनके ध्यान और नाम कीर्तन द्वारा अपनी मुक्तिकी प्रतिबंधक, एक जन्म की नहीं, वरन् अनेक जन्म जन्मान्तरोंकी संचित पापराशि का ध्वंस कब करोगे? ऐसा न करके तुम तो अनित्य विषय भोगों में लिप्त होकर और मुक्तिकी प्रतिबंधक पाप-राशिका संचय ही कर रहे हो। अन्तःकरण को मलीन से मलिनतर बना रहे हो। कहाँ तो तुम्हें नित्य ब्रह्म का ध्यानाभ्यास करना चाहिये था, और कहाँ तुम अनित्य हाड़मांस के पिण्ड में आत्मबुद्धि करके घोर मतवाले हो रहे हो। हाय! भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का अभ्यास न करके दुःख के कारण अज्ञान की वृद्धि कर रहे हो, किन्तु उसके नाश की चेष्टा भी क्या कभी करते हो? मुक्त्युपयोगी यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी यदि दुःख के कारणस्वरूप इस अज्ञान के नाशके लिये श्री

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुकी शरण में नहीं गये और दुःखका नाश करने की चेष्टा नहीं की तब देहान्त होनेपर दुःख का भी अन्त हो जायगा और शान्ति मिल जायगी, इस का हे वत्स ! क्या प्रमाण है ?

प्रत्येक मनुष्य की अपनी अपनी मनोवृत्ति ही उसके भावी जन्म और दुःखसुख भोगों का परिचय देती है। सात्विक राजसिक और तामसिक भेद से जो जैसा कर्म करता है तदनुसार ही उसकी मनोवृति बनती है और देहान्त के समय वैसी ही वृत्ति के अनुसार ऊद्ध्र्व, मध्यम और अधम योनियों में उसकी गति होती है

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः।
तिर्य्यंकत्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥

मनुस्मृति १२-४०

अर्थात् जो मनुष्य सत्वगुणकी वृत्तिमें स्थित रहकर जीवन यात्रा करता है, वह देह त्यागनेपर देवत्व पाता है, जो मनुष्य रजोगुणमें अवस्थित रहता है, वह देह त्यागनेपर मनुष्य जन्म पाता है और जो मनुष्य तमोगुण की वृत्ति से जीवन व्यतीत करता है, मृत्युके उपरान्त वह पशु पक्षियों की योनियों में जन्म लेता है। इस प्रकार गुणों के भेद से मनुष्य की जन्मान्तर में तीन प्रकार की गति होती है। श्री भगवान् श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं—

ऊद्ध्र्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुण वृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥१४-१८

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् सत्वगुण प्रधान मनुष्य ऊद्र्ध्व लोकों को गमन करते हैं, रजोगुण प्रधान मध्य में रह जाते हैं, अर्थात् मनुष्यलोक में जन्म लेते है और निकृष्ठ गुणावलंबी तमःप्रधान अधोलोक में जाते हैं।

हे वत्स! इसका तात्पर्य यह है कि सकल सत्व-गुण प्रधान जो व्यक्ति जप, तप, योग, ध्यानादि में सदा रत रहते हैं वे मरने पर सत्त्वोत्कर्षण के तारतम्यानुसार गंधर्व, पितृ, देव और इसी प्रकार सत्यलोक अर्थात् ब्रह्मलोक पर्यन्त जाने को समर्थ होते हैं। रजोगुण प्रधान मनुष्य सकाम कर्म जैसे मन्दिर, तालाव और कुँवे आदि की प्रतिष्ठा और पूजा द्वारा, हमें इसका फल मिलेगा और समाजमें हमारी मानप्रतिष्ठा होगी, ऐसी भावना से नाना प्रकार की पूजादि में सदा लगे रहते हैं, उनको देहान्त होनेपर पुण्य पाप मिश्रित मनुष्य लोक में ही फिर आना पड़ता है और जो सर्वदा आहार, आलस्य और निद्रादिपरायण रहते हैं, वे निकृष्ट गुणावलंबी तमोगुण प्रधान मनुष्य हैं, ऐसे निकृष्टतमोवृत्तिमें रहनेवाले मरने पर पशु-पक्षि प्रभृति अधोयोनियों में जन्म लेते हैं, अथवा तमोगुण के तारतम्यानुसार अंधतामिस्रादि नरकों को जाते हैं. छान्दोग्य श्रुति (५, १०, ७-८) में कहा है—

'य इह रमणीय चरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्वयोनिं वा शूकर योनिं वा चाण्डाल योनिं वा । ७ । अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेति ८ ॥"

अर्थात् जो लोग शुभ कर्मों के अनुष्ठान में जीवन व्यतीत करते हैं, उनका ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रभृति उत्कृष्ट वर्णोंमें जन्म होता है। जो लोग ऐसा न करके केवल पापानुष्ठान में ही जीवन व्यतीत करते हैं, वे लोग कुत्ता, शूकर, चाण्डाल प्रभृति हीन जातियों में जन्म पाते हैं और जो कि उपासना या कर्मानुष्ठान कुछ भी नहीं करते, उन को देवयान और पितृयान इन दोनों मार्गों में से किसी मार्ग से जाने का अधिकार नहीं होता, उनको क्षुद्र जन्तुओं की योनियों में जन्ममरणप्रवाहरूप मार्ग से चलना पड़ता है।

वत्स ! यह देह नष्ट होने पर फिर पुण्य के अभाव से दुष्कर्मवश यदि पशु अथवा स्थावरादि योनि प्राप्त हुई तब फिर कितने जन्मों के पश्चात् साधन के योग्य यह मनुष्य देह मिलेगा, इसका कुछ निश्चय नहीं। इसलिये, ऐसे उत्कृष्ट मनुष्य देह को पाकर इसे वृथा मत खोओ। देवता लोग भी मुक्ति की इच्छा से इसी मानव-देह के लिये प्रार्थना किया करते हैं। मोक्ष का नाम सुनकर ऐसा मत सोचो कि 'मुक्ति' परमानंद स्वरूप से भिन्न अन्य कोई वस्तु है। आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति होने पर जिस परमानंद की प्राप्ति होती है, उसी का नाम मुक्ति है। इस संसार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में किसी प्राणी से पूछो कि 'तुम्हें क्या चाहिये', तो प्रत्येक यही उत्तर एक स्वर से देगा कि 'आनन्द चाहिये' 'सुख चाहिये'। उस आनंद अर्थात् परम सुख के मिलने पर मनुष्य को फिर कभी दुःख नहीं होता। मनुष्य बड़े भारी कष्ट में भी धीर, स्थिर, शान्त रहता है, विचलित नहीं होता। वह आनन्द यदि इस क्षण भंगुर नामरूपात्मक जगतके विषयों के उपभोग में मिलता होता तो कोई भी ब्रह्म अथवा श्री भगवान की शरण में नहीं जाता और श्री भगवान भी यदि इस सदा परिवर्तनशील दृश्य-प्रपंच के सदृश नाशवान, अचिरस्थायी और दुःखदायी होते, तब भी कोई उस आनंद-लाभ के लिये उनको न पुकारता और उनकी उपासना न करता। वह आनन्द स्वरूप हैं, इसीलियें तो सब लोग उनके पाने की इच्छा करते हैं। वह समष्टि आनन्द-स्वरूप हैं, उन को पालिया तो सब आनन्द की प्राप्ति हो गई। इसीलिये सब वर्ण और सब जातियाँ उस नित्यानंद की प्राप्ति के निमित्त उन का आश्रय लेती हैं और उपासना करती हैं। उस नित्यानंद स्वरूप, सुख स्वरूप को ही कोई 'भगवान', कोई 'ब्रह्म', कोई 'परमात्मा' कहते हैं। 'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते'। उस आनन्द स्वरूप श्री भगवान को पाने के प्रारंभिक उपायों में भोगों में आसक्त और शिश्नोदरपरायण क्षीणबल कलियुग के जीवों के लिये एक मात्र भक्ति भाव से 'जप साधना' अथवा 'नाम साधना' ही आनन्दस्वरूप भगवद्दर्शन-प्राप्ति के लिये सहज, सरल और सुगम उपाय है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाम जपसे लाभ

वेदान्त दर्शन का सिद्धान्त है कि जगत् के नाम और रूप मिथ्या हैं, उनकी वास्तव में कोई सत्ता नहीं है। जो लोग अपने साधन बलसे अद्वैतपद के पथ पर आरूढ़ हैं, उनके लिये नानात्व नहीं। इस जगत् में एक को छोड़कर दूसरी वस्तु उनको नहीं दिखती, वे लोग 'वासुदेवः सर्व्वमिति' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' इत्यादि भाव अनुभव करते हैं, सुतरां उनके लिये नाम और रूप असत्य हैं, यह मानना पड़ेगा। जो लोग अद्वैत पदका कोई ज्ञान नहीं रखते, अद्वैत वस्तु को जो लोग जानते नहीं, एक मात्र जगत् को ही सत्य मानकर जगत् से इस प्रकार मिल गये हैं कि अपने आपको भुला दिया है अर्थात् अपने नित्य ज्ञान-स्वरूप और आनन्द-स्वरूप को भूल गये हैं, वे लोग किस तरह यह बात कह सकते हैं कि जगत् के नाम रूप असत्य हैं? वे लोग जगत् को ही सत्यवत् मान कर तदनुरूप व्यवहार करते रहते हैं। इस जड़ देहको आत्मा मान कर उसके क्षय, नाश और वृद्धि इत्यादि में आत्मा का क्षय, नाश और वृद्धि इत्यादि मानते हैं। इसी प्रकार मनोधर्मादि भी आत्मा में न होने पर भी नित्य आनंद स्वरूप आत्मा में मन के सुख दुःखादि धर्म आरोपित कर के आत्मा को सुखी दुःखी मानते हैं, अर्थात् अपने को सुखी दुखी समझते हैं। वे लोग अद्वैत पद का कुछ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन्धान नहीं रखते। वर्तमान युग में इस श्रेणीके मनुष्य अधिक हैं, उनको अपने आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित करने के लिये उनकी रुचि के अनुसार ऐसा साधन देना आवश्यक है, जिससे शीघ्र ही उनके मन की स्थिरता अर्थात् चित्त की एकाग्रता सिद्ध हो सके और मन अन्तर्मुखी हो कर चेतन स्वरूप अन्तरात्मा में प्रतिष्ठित हो। श्री भगवान् अर्थात् आत्म तत्व के जिज्ञासुओं के लिये वर्तमान समय के अनुकूल साधनों में चित्त-शुद्धि करने वाला, और मन को एकाग्र भाव में लाने वाला उत्कृष्ट मार्ग भक्ति सहित श्वास प्रश्वासके साथ जप या नाम-संकीर्तन है। मनुष्य के मन में स्वभावतः प्रति-मुहूर्त बहुत से विचार और विभिन्न भाव आ कर मन को चंचल कर के विक्षेप में डालते रहते हैं और नित्य नई २ वासनायें उदय हो कर मन को क्षिप्तप्राय करती रहती हैं। श्वास २ में जप अथवा नाम साधना की श्रेष्ठता यही है कि श्रीगुरु प्रदत्त शक्ति संपुटित नाम या मंत्र वार २ जप द्वारा मन में उस नाम या मंत्र के सदृश एकदम स्पन्दन आरंभ करके मन की बहिर्मुखी गति को एक मुखी कर देता है। इस प्रकार नाम जप के समय मन में दूसरे विचारों के उठने को अवकाश नहीं मिलता और मन स्वयं ही विषयों के चिन्तन का त्याग कर देता है। मनुष्य के श्वास प्रश्वास की क्रिया स्वभावतः अनवरत अनियमित रूप से चल रही है, प्राणायाम के द्वारा वह भी नियमित हो जाती है, इसीलिये योग शास्त्रों में प्राणायाम की अत्यन्त आवश्यकता मानी गई है। परन्तु श्री सद्गुरूपदिष्ट

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ति-संपुटित मंत्र अथवा नाम जप द्वारा प्राणायाम अपने आप ही होने लगता है, और उस में किसी प्रकार की हानि होने की भी कोई आशंका नहीं होती। प्राणायाम के सब गुण और क्रिया मन्त्र और नाम जप के साधन में विद्यमान हैं, परन्तु शक्ति-संचार करने में समर्थ ऐसा गुरु मिलना अत्यन्त आवश्यक है। मनके किसी भी एक गहरे चिन्तन में लगे रहने पर प्राण आप ही स्थिर हो जाया करते हैं, परन्तु नाम जप ही गंभीरता से किसी एक-विषयी ध्यान की शक्ति प्राप्त करने का एक मात्र सहज और निर्विघ्न मार्ग है। श्वास-श्वास में मन्त्र अथवा नाम जप केवल सर्वापेक्षा सहज साध्य प्राणायाम की विधि ही नहीं, वरन् मन के निरन्तर नाम जप में लगे रहने पर नाम से उत्पन्न होने वाला स्पन्दन चित्त में उपस्थित होता है और तब चित्त अथवा मन नाममय हो जाता है, इस अवस्था में चित्त की सैंकड़ों बाधायें और विकृत कंपन नामस्पन्दन की तरंगों में बहकर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और मन संस्कार शून्य हो जाता है। यह सारी अवस्था यदि विचार पूर्वक देखी जाय तो मंत्र अथवा नाम जप के सदृश सरल और ऊंचा साधन दूसरा नहीं है। मन्त्र या नाम जप के द्वारा मन संस्कारशून्य हो जाता है, और उसके साथ २ मस्तिष्क-कण विकसित होते हैं, हृदय में एक नई आनंद धारा बहने लगती है और शारीरिक व मानसिक ग्लानि दूर हो जाती है। इस अवस्था में मनुष्य इच्छा करे तो बड़ी आसानीसे नये विषयों को धारण करने का सामर्थ्य प्राप्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर सकता है। इस अवस्था में विषयान्तर में मन न लगाया जाय तो मस्तिष्क-कण और भी विकसित होते हैं और उसके साथ २ भाव और प्रेम इत्यादि उमड़ने लगते हैं। मन्त्र या नाम-जप का फल जीवन शक्ति को विशुद्ध करना है और जीवन शक्ति के केन्द्रीभूत कोष के प्रस्फुटन का फल यह होता है कि सहज और सरल ध्यान की धारा प्रवाहित होने लगती है और उस स्नायु-जाल को भी बल मिलता है, जो सारे शरीर के कल-पुर्जों को बल देने में निरन्तर व्यस्त है। मंत्र या नाम-साधना के द्वारा प्राणों की क्रिया होने पर जीवनी-शक्ति का क्षय-पथ बन्द हो जाता है और रक्त की विशुद्धि होने लगती है, और वह शुद्ध रक्त शरीर व मस्तिष्क को बहुत तरह की सहायता देता है।

अब कौन सा मंत्र या कौन सा नाम जप के योग्य है, अथवा किस तरह मंत्र या नाम का उच्चारण करने से आसानी से हमारे उद्देश्य की सिद्धि होगी, इसकी संक्षेप में आलोचना करते हैं। जिस तरह मंत्र या नाम-जप के समय मस्तिष्क का कोषसमूह आप ही आप लगातार कंपित हो वही मंत्र या नाम-जप श्रेष्ठ समझना चाहिये। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कंप निम्नगामी न हो या नीचे उतरने न पावे और उसमें किसी प्रकार की बाधा न आवे। ये दोनों बातें लक्ष्य में रखकर जप के नाम का निर्वाचन करना चाहिये। इस के लिये गुरूपदिष्ट मंत्र या नाम-ग्रहण के साथ मंत्र-शक्ति अर्थात् कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बहुत आवश्यक है। इसी शक्ति की प्राप्ति को मंत्र-चैतन्य कहते हैं। मूर्धन्य वर्णों का ही यह गुण है कि उनके उच्चारण से मूर्धा का स्नायुमण्डल अनवरत कंपित होने लगता है। ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण र ष इन वर्णों का उच्चारण-स्थान मूर्धा है, ये मूर्धन्य वर्ण हैं। बिना जिह्वा के प्रयोग के शब्दों का उच्चरण संभव नहीं, अतएव मूर्धा का कंपन निम्नाभिमुख न हो इसके लिये उनके साथ कंठ्य वर्णों का संयोग करना जरूरी है। अ आ क ख ग घ ङ ह कण्ठ्य वर्ण हैं। 'अकुह विसर्जनीयानां कण्ठः।" उ ऊ प फ ब भ म ओष्ठ वर्ण हैं।

वक्षःस्थल और नाभि-देश की नाड़ियाँ स्पंदित करनी होवें, तो कंठ और ओष्ठ के वर्ण ही सर्वापेक्षा अधिक कार्य करेंगे। इन कण्ठ्य वर्णों में दीर्घ स्वर आ और ओष्ठ्य वर्णों में ऊ कार्य करनेवाले हैं। शरीर के नीचे के भागों की नाड़ियों में इन वर्णों के या चैतन्यधारा के संचालित होने पर यदि शरीर के ऊर्द्ध्व भाग में मन स्थिर किया जाय, तभी धारा आसानी से ऊर्द्ध्वगामिनी हो जाती है। लृ त थ द ध न ल स दन्त्य वर्ण हैं। इस प्रकार संकेत द्वारा ॐ राम, हरिः, हर, हुँ, हूँ ह्रीं क्रीं क्लीं रँ राधा कृष्ण काली दुर्गा इत्यादि सब मंत्र और नाम जप और कीर्तन के लिये श्रेष्ठ हैं, यह निर्णय किया गया है।

मनुष्यों का मन स्वभाव से ही नीची भूमिकाओं में विचरण करता रहता है, संसार में ९९ प्रतिशत लोग संसारी विषयों में आसक्त रहते हैं, इस लिये जो मंत्र या नाम सर्वांग की नाड़ियों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में अथवा नीचे के भागों में दृढ़ता से कंप उत्पन्न करते हैं वे उन के लिये बड़े आवश्यक और कल्याण-प्रद होते हैं। इसीलिये ऋषियों ने कण्ठ्य, ओष्ठ्य और दन्त्य वर्णों में से नामों का निर्वाचन किया है।

ॐ उच्चारण करने से अ+उ+म् का प्रयोग होता है, अ कण्ठ्य वर्ण और उ म ओष्ठ्य वर्ण हैं। ॐ के सदृश शरीर के मध्य और अधःस्थित स्नायु केन्द्रों में कंप की शक्ति देने वाले अन्य शब्द नहीं हैं, और एक विशेषता यह भी देखी जाती है कि प्रायः बीज मन्त्र सभी मूर्धन्य वर्णों के सहयोग से गठित हैं।*

जो लोग ध्यान करने में असमर्थ हैं, अथवा उपास्य देव में जिनका मन एकाग्र नहीं होता, उन लोगों को आलस्य छोड़कर नियमित रूप से मंत्र या नाम का जप करना आवश्यक है। जप का उद्देश्य ध्यान की स्थिति प्राप्त करना ही है। हम कहे देते हैं कि उच्च स्वर से राग रागिनी और ताल के साथ नाम कीर्तन की आवश्यकता भी है। जप के द्वारा मन की चंचलता कम न हो तो, नाम-संकीर्तन में अधिक मन लगाना होगा, और नाम-

---

* नोटः—मंत्रों का रहस्य और वर्णमाला का पाँचों तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश छओं चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) और तीनों मुख्य नाड़ियों (ईडा, पिङ्गला और सुषुम्ना) के साथ संबंध, 'शारदा तिलक' तंत्र-शास्त्र के आधार पर देखें। अनुवादक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कीर्तन द्वारा मन जितना अधिक मानसिक जप अथवा ध्यान में लगने लगे, उतना ही कीर्तन में मन कम लगना चाहिये। मंत्र अथवा नाम के जपसाधन द्वारा चित्त को स्थिर करने के लिये शक्ति प्राप्त होने पर इस जगत की सब दृश्य वस्तुओं में ब्रह्म या अपने इष्ट की भावना रखनी होगी, इस प्रकार भावना रखने से सब वस्तुओं में आत्मदर्शन होने लगता है। सच्चिदानंद ब्रह्म तो हम सब लोगों का ही स्वरूप है, उसकी तो 'अहम्' से पृथक भावना ही नहीं हो सकती, क्योंकि हमारा "मैं" ही तो "वह" है और जो "वह" है, वही "मैं" है, इसलिये तब मालूम होने लगता है कि उस की सत्ता से भिन्न अर्थात् उस के अस्तित्व के आधार के बिना किसी वस्तु की सत्ता नहीं है, सभी चिदाकाश के आधार पर स्थिति हैं, केवल भ्रमवश एक अद्वितीय ब्रह्म नाना दिखलाई पड़ता है । इसप्रकार चिन्तन और ध्यान जब दीर्घकाल में स्थायी होगा तभी ब्रह्मभाव की उपलब्धि हो सकेगी। भृंगी एक प्रकार का कीड़ा होता है वह अन्य कीड़ों को पकड़ ले जाकर अपने घर में रख लेता है, वे कीड़े अहर्निश भृंगी का ध्यान करते २ अपना रूप बदल कर भृंगी (भौंरा) बन कर बाहर आ जाते हैं। ठीक इसी तरह मनुष्य भी निरन्तर ब्रह्म भावना करते २ ब्रह्म ही हो जाता है। 'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति'।

'एक सच्चिदानंद ब्रह्म सत्य है, और वह सच्चिदानंद ब्रह्म 'मैं' हूँ और जो कुछ दिखाई दे रहा है, सभी ब्रह्म है, उस के सिवाय कुछ भी नहीं—जिन को इस प्रकार अनुभव हुआ है, वे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किसी को भी अपने स्वरूप से पृथक्क नहीं देखते, उन को शोक मोह और घृणादि कुछ भी नहीं रहते। श्रुति कहती है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वं भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

ईशोपनिषत्

अर्थः—जो साधक सर्व प्राणियों को आत्मा में और आत्मा को सब प्राणियों में अवस्थित देखता है, वही सर्वात्मदर्शी पुरुष सर्वात्म-भाव-दर्शन के फलस्वरूप किसी से घृणा नहीं करता। इसका तात्पर्य यह है कि चैतन्य स्वरूप आत्मा 'मैं' यदि सब में स्थित है तो इस जगत में हमारा घृणा का पात्र कौन, और हम भी घृणा के पात्र किस के? जिस क्षण प्राणिमात्र में आत्मस्वरूप का अनुभव होगा, उसी क्षण एकात्मदर्शी को मोह या शोक कहाँ? अर्थात् जीव-ब्रह्मैक्य-ज्ञान द्वारा जिस को शोक और मोह के मूलकारण अज्ञान का नाश हो गया है, उसे शोक और मोह नहीं रहते। ऐसे एकात्मदर्शी पुरुष ही स्वभाव से विश्व-प्रेमी होते हैं और ऐसे पुरुष अथवा महात्मा यथार्थ दुर्लभ हैं। गीता में भगवान कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थः—बहुत जन्मों के पश्चात् सत्कर्म और तपस्यादि द्वारा पुण्य संचय करके ज्ञानवान अर्थात् जिन को ज्ञान की परिपक्व अवस्था प्राप्त हुई है, वे ही इस दृश्य जगत में 'सर्वं वासुदेवः' अर्थात् सब के प्रत्यगात्मा अर्थात् अन्तरात्मा के रूप में वासुदेव ही है, ऐसा ज्ञान प्राप्त करके मुझ को प्राप्त होते है। ऐसा महात्मा सचराचर जगत में देखने में नहीं आता अर्थात् अत्यन्त दुर्लभ है।

मनुष्य साधनादि द्वारा जब इस अवस्था में पहुँचता है तभी केवल वह मनुष्य कह सकता है कि जगत के नाम और रूप मिथ्या हैं।

नदी को पार करने के लिये जैसे नौका का आश्रय लेना पड़ता है, और जब उस पार उतर जाते हैं, तब नौका का प्रयोजन नहीं रहता, इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म को जब जान लिया तब प्रतीक-उपासना की आगे आवश्यकता नहीं रहती। नाम और रूप दोनों उस के प्रतीक हैं। नाम और रूप का आश्रय लेकर जो उपासना की जाती है, उस को प्रतीक-उपासना कहते हैं। जब तक नाम और रूप की विस्मृति नहीं होती है, तब तक देह में आत्म बुद्धि है, उस समय तक ऐसे देहाभिमानी मनुष्य के लिये निर्गुण की उपासना अत्यन्त कष्ट साध्य है। गीता में श्री भगवान कहते हैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम्।
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थः—अव्यक्त अर्थात् नामरूपविहीन निर्गुण ब्रह्म में चित्त लगाने वाले पुरुषों को अधिक क्लेश होता है, क्योंकि देहादि में जिन की आत्मबुद्धि है, उनके लिये वाणी और मन के अगोचर निर्गुण ब्रह्म को जानना नितान्त कष्ट साध्य है।

जिनको इस देह में आत्मबुद्धि है, जो अपना नाम और रूप भूल नहीं सकते और जो लोग स्त्री पुत्रादि के नाम और रूप के नशे में मत्त हैं, ऐसे अविद्या में फंसे लोगों के लिये, उनकी ममता और मोह को दूर करने के लिये, सगुण ब्रह्म के नामजप और रूपादि के ध्यान की व्यवस्था शास्त्रों में की गई है। अनित्य स्त्रीपुत्रादि के नामरूपादि में आसक्त मनुष्य यदि कहें कि नाम रूप मिथ्या हैं, तो उनकी यह उक्ति सदैव अग्राह्य है। ऐसा उपदेश नामरूपों में फंसे मनुष्यों के प्रति शोभा नहीं पाता। ऐसे मनुष्यों को तो श्री भगवान के मधुर नाम और रूप पर आश्रित साधन और उपासना करना ही अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि आत्मा नामरूपातीत परम धाम से नामरूपात्मक संसार में पतित होकर जीव संज्ञा प्राप्त करती है, फिर उसको अपने परमपद पर उठने के लिये प्रथमतः नाम रूपके सहारे उठना पड़ेगा।

नामरूपात्मिका सृष्टिर्यस्मात्तदवलम्बनात्।
बन्धनान्मुच्यमानोऽयं मुक्तिमाप्नोति साधकः॥
तामेवभूमिमालंब्य स्खलनं यत्र जायते।
उत्तिष्ठति जनः सर्वोऽप्यध्येनैतत् समीक्ष्यते॥

(मंत्रयोग संहिता)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थ :—यह सृष्टि नामरूपात्मिका है इसलिये नाम रूपका अवलंब लेकर मुमुक्षु साधक संसार बंधन से मुक्तिलाभ करता है। जैसे भूमि पर पैर फिसल कर गिरने पर उस भूमि का ही आश्रय लेकर उठा जाता है ।

श्री भगवान के अनन्त नाम और रूपों में से जिनको जिस पवित्र नाम और पवित्र रूप की इच्छा हो, उसी का आश्रय लेकर भक्ति पूर्वक साधना करनेपर सच्चिदानंदस्वरूप श्रीभगवान अथवा आत्मदेव हृदयमें प्रकाशित होते हैं और अन्त में उसी सच्चिदानन्दस्वरूप में समस्त नामरूप विलीन हो जाते हैं, जैसे नदियाँ सागर में मिलकर विलीन हो जाती हैं। तब एकमात्र सच्चिदानंद से भिन्न किसी नामरूपका पृथक अस्तित्व नहीं रहता। श्रुति कहती है :—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ (मुण्डकोपनिषत्)

अर्थ :—जैसे नदियाँ बहती बहती अपने नामरूप त्याग कर समुद्र में जाकर अस्त हो जाती हैं, वैसे ही ब्रह्म का जानने वाला नामरूपसे मुक्त होकर मन वाणी से अतीत अगोचर परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है अर्थात् समुद्र-तुल्य ब्रह्म-स्वरूप की प्राप्ति करता है।

साधना या उपासना के द्वारा जिन लोगों के चित्त निर्मल नहीं हुए हैं, जिनका मन क्षणिक रमणीय भोगों से वितृष्ण नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हुआ है, ऐसी श्रेणी के लोगों के सामने ब्रह्मज्ञान अथवा आत्म-ज्ञान प्रकाश करना अथवा वेदान्त का उपदेश करना महान् अनर्थ ही उपस्थित करता है।

एक समय भगवान श्री जगद्गुरु श्रीमच्छङ्कराचार्य के प्रचारित पवित्र ब्रह्मज्ञान का इस प्रकार अपव्यवहार होते देख महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य 'अहं ब्रह्मास्मि' इस महावाक्य का उच्चारण करने और सुनने से भयभीत होते थे, यद्यपि वे श्री शंकर सम्प्रदाय के भारतीनामा सन्यासी थे। इसीलिये वे तत्कालीन लोगों को ज्ञानयोग का अनधिकारी देखकर और जानकर भक्ति और नामसाधन के माहात्म्य का प्रचार कर गये हैं और साथ साथ मंत्र और नाम द्वारा शक्ति-संचार करके बद्धजीवों का उद्धार कर गये हैं।

नाम-माहात्म्य-वर्णन

यह ध्रुव सत्य है कि भगवान के नाम से सर्वाभीष्ट की सिद्धि होती है। उसके नाम से मंत्र जप, स्तुति, पाठ और कीर्तन द्वारा भाव, भक्ति और प्रेम की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं वरन् ईश्वर का साक्षात्कार पर्यन्त हो जाता है।

नाम्ना हि लभ्यते भक्तिर्भक्त्या प्रेम हि लभ्यते।
प्रेम्णा लभ्यते गोविन्दस्ततो नाम्नः परं न हि॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् श्री भगवान के नाम अथवा मंत्र के जप एवं कीर्तनादि द्वारा भक्ति प्राप्त होती है, भक्ति परिपक्व होनेपर प्रेम आता है। और प्रेम परिपक्व होनेपर अद्वैत स्थिति में आत्मा अर्थात् गोविन्द की प्राप्ति होती है, इसलिये नाम परम्परा से आत्मदर्शन अर्थात् गोविन्द की प्राप्ति होती है। अतएव नाम के बराबर दूसरा कुछ नहीं। श्रुति कहती है :—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्॥
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

॥ कठोपनिषत्॥

अर्थात्—'ॐ' यह अक्षर ही, आदि नाम बीज, सगुण और निर्गुण ब्रह्म का वाचक और प्रतिपादक मंत्र है। कार्यब्रह्म और परब्रह्मस्वरूप यह अक्षर-मंत्र ही उक्त उभय प्रकारके ब्रह्म का प्रतीक वा प्रतिनिधिरूप है। इस अक्षर को ब्रह्म के दोनों प्रकार जान कर अर्थात् इस अक्षर की लक्ष्यार्थ सहित जो लोग उपासना करते हैं, वे जो २ इच्छा करते हैं, वही सिद्ध होती है। अर्थात् जो मनुष्य निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म को जानना चाहता है, वह उस तत्त्व को जान सकेगा, अर्थात् जीवन काल में ही सुखदुःखादि द्वन्द्वों से अतीत हो कर ब्रह्मस्वरूपता को प्राप्त होगा और जो उसकी सगुण भावना से उपासना करता है, वह सुख ऐश्वर्य आदि लाभ-पूर्वक ब्रह्मलोक को जाता है। इस लिये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस अक्षर या मंत्र द्वारा परब्रह्म को जाना जाता है और अपर ब्रह्म को पाया जाता है। इसी कारण ॐ कार की उपासना का अवलंबन, ब्रह्म-प्राप्ति के अन्य सब साधनों में श्रेष्ठ. अत्युत्तम और उत्कृष्ट है। साधक इस आलम्बन को भलीभांति ग्रहण कर के स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है और ब्रह्मरूप हो कर ब्रह्म-लोक तक पूजित होता है। श्रुति-वचन है:—

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं, सामभिर्यत्तत् कवयो वेदयन्ते तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्, यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परंचेति ॥ (प्रश्नोपनिषत्)

अर्थात् ऋग्वेद द्वारा मनुष्य-लोक, यजुर्वेद द्वारा अन्तरिक्ष (चंद्रादि लोक) और सामवेद द्वारा सत्यलोक की प्राप्ति होती है, जिसका ज्ञान ऋषिगण को है। जो विद्वान् (ब्रह्म को जानने वाला) पुरुष अर्थ की भावना सहित ॐकार का अवलंबन लेकर उसका आश्रय पकड़ता है, वह शान्त, अजर, अमर और अभय पद अर्थात् परम ब्रह्मपद को प्राप्त होता है।

दुराचार रतोवापि मन्नाम भजनात् कपे।
सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम् ॥
(मुक्तिकोपनिषत्)

अर्थः—हे कपिवर! दुराचारी भी मेरे नाम के भजन से सालोक्य मुक्ति पाता है, अर्थात् ईश्वर के साथ उसके लोक में वास करता है, उसे अन्य लोकान्तर की प्राप्ति नहीं होती महा योगेश्वर पतञ्जलि ऋषि अपने योग सूत्रों में लिखते हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'तज्जपस्तदर्थ भावनम्', अर्थात् ईश्वर के वाचक प्रणव का जप और उसके अर्थ का ध्यान अर्थात् प्रणव के अभिधेय चैतन्य-स्वरूप ईश्वर की भावना ही साधन का मूल है। वत्स! उसके नाम के जप और उसके अर्थ के चिन्तन द्वारा जप करने वाले का मल विना जाने दूर हो जाता है, चित्त शुद्ध हो जाता है, चित्तवृत्ति-निरोध रूपी योग की सिद्धि हो जाती है और पश्चात् बादलों में से निकले हुए सूर्य के सदृश आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वरानुभूति होती है।

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावाश्च।

(योग दर्शन)

अर्थात् ईश्वरके नाम का जप और उसके अर्थ का ध्यान करने से ईश्वर साक्षात्कार अथवा आत्मानुभूति होने पर्यन्त के अन्तराय (विघ्न) दूर होते हैं और फिर ईश्वर के अनुग्रह से मनुष्य को प्रत्यक् चेतनतत्त्व अर्थात् इस शरीरस्थ चैतन्य रूपी आत्मा का साक्षात्कार होता है। 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' इस सूत्र का भाष्य भगवान् श्री वेदव्यास जी इस प्रकार करते हैं।

प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावनम्, तदस्य योगिनः प्रणव जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्र संपद्यते।

प्रणव का जप एवं प्रणव के अभिधेय अर्थात् प्रतिपाद्य चैतन्य रूपी ईश्वर की भावना करनी चाहिये।। इस प्रकार प्रणव का जप और उसके अर्थ की भावना करने वाले योगी का चित्त एकाग्र होने लगता है, अर्थात् योगी जब प्रणवका जप और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसके अर्थ की भावना करता है, तब उसका चित्त एक मात्र भगवान् में एकाग्र होकर शान्त हो जाता है।

> स्वाध्यायाद्योग मासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
> स्वाध्याय योग-संपत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥
>
> (विष्णु पुराण में भी ऐसा ही कथन है।)

अर्थः—साधक को चाहिये कि स्वाध्याय अर्थात् इष्ट मंत्रादि के जप से योगाभ्यास (समाधि के अभ्यास) में लगे और योगाभ्यास के साथ २ स्वाध्याय (जप) करे। स्वाध्याय और योगाभ्यास दोनों की साधना से परमात्मा के दर्शन होते हैं। 'स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः' इस सूत्र में भी यही बात कही गई है। एक जप मात्र द्वारा ही परम पराक्रम से मन वाणी के अगोचर दुर्विज्ञेय ब्रह्मतत्त्व में स्थिति होती है। यही श्रुति माता भी स्पष्ट रूप से कह रही है।

> प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्य मुच्यते।
> अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्॥
>
> (मुण्डकोपनिषत्)

अर्थः—अप्रमत्तचित्त, वाह्य विषयों से अनासक्त होकर प्रणव-रूपी धनुष पर मन रूप शर चढ़ा कर ब्रह्मचैतन्यरूपी लक्ष्य को वेधना चाहिये। बाण का अग्र भाग जैसे मृगादि लक्ष्य में प्रविष्ट हो कर अदृश्य हो जाता है, वैसे ही साधक का मन भी ब्रह्म में प्रविष्ट हो कर तन्मय (ब्रह्म चैतन्यमय) हो जाना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चाहिये। तब साथ २ ही 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इस श्रुति-सिद्धान्त की सार्थकता सिद्ध होगी।

वत्स! लक्ष्य-वेध न होने पर्यन्त जैसे व्याध अपने धनुष पर तीर चढ़ा कर अपने लक्ष्य पर तीर चलाता रहता है, उसी प्रकार जब तक अपने लक्ष्यस्वरूप परमानंद ब्रह्म अथवा श्री भगवान का अपने अन्तर में अनुभव नहीं कर पाते हैं, तब तक मंत्र या नामरूपी धनुष पर मनरूपी शर चढ़ा कर बराबर चलाते रहो, अर्थात् गुरूपदेश के अनुसार सगुण ब्रह्म के स्थान भ्रूमध्य में अन्तर्दृष्टि रख कर प्रत्येक श्वासप्रश्वास में उसका नाम लेते रहो। श्री गुरूपदेश के अनुसार भक्तिभाव से इस प्रकार नाम जपते २ अपने आप ही मन अपनी चंचलता के स्वभाव का परित्याग करके श्री भगवान के रूप में तन्मय हो जायगा अर्थात् ब्रह्म की ज्ञानसत्ता में अभिन्नता प्राप्त कर लेगा।

मनुस्मृति में कहा है "जपेनैव संसिध्येत्" अर्थात् एकमात्र जप द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है, (काम्य फल प्राप्ति ब्रह्म प्राप्ति वा) जप के फल का माहात्म्य वर्णन करते हुए मनु कहते हैं—

विधि यज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
ये पाकयज्ञाश्च चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जप यज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

अर्थः—दर्शपौर्णमासादि ज्योतिष्टोमादि प्रभृति विधि-यज्ञों की अपेक्षा जपयज्ञ दस गुणा अधिक मंगलप्रद है। पंच महा यज्ञों के अन्तर्गत वैश्वदेव, होम, देवयज्ञ, बलिकर्म, भूतयज्ञ,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्य श्राद्ध, पितृयज्ञ और अतिथि-भोजन नृयज्ञ, इन चारों महा-यज्ञों सहित यदि दर्श पौर्णमास प्रभृति विधि-यज्ञ-समूह को एक ओर रक्खा जाय तो भी ये सब मिल कर प्रणवादि के जप-यज्ञ की सोलहवीं कला की बराबरी भी नहीं कर सकते।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि 'यज्ञानां जप-यज्ञोऽस्मि' वेद और स्मृति विहित जितने प्रकार के यज्ञ हैं, उनमें जप-यज्ञ मैं हूँ।

वत्स! एकमात्र श्री भगवान के नाम-स्मरण द्वारा ही सब प्रकार के यज्ञों का फल मिलता है। अन्य यज्ञों का पृथक अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं है। जप-यज्ञ भगवान ही है, इस लिये मन में यह धारणा रखनी पड़ेगी कि नाम और नामी में भेद नहीं है। बंगला भाषा की एक उक्ति है कि

जेइ नाम सेइ कृष्णा भज निष्ठा करि।
नामेर सहित फिरेन आपनि श्री हरि॥

हिन्दी अनुवाद—जो नाम है वही है कृष्ण भज निष्ठा करि।
नाम के साथ फिरते हैं आप श्री हरि॥

भक्त माल में कहा है—नाम औ भगवान हैं एक ही समान।
तथापि है शीघ्र नाम करत फल दान॥

भगवत् संदर्भ में कहा है कि—

"यत्तत्वं श्री विग्रहरूपेण चक्षुरादावुदयते, तदेव नाम-रूपेण वागावादिति स्थितं, तस्मान्नामनामिनोः स्वरूपाभेदेन तत्साक्षात्कारे तत्साक्षात्कार एव।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थः—जो भगवत् तत्त्व रूप धारण करके दृष्टिपथ में आविर्भूत होता है, वही पहले ही नाम रूप से वाणी में आ बसता है। नाम और नामी स्वरूप से अभेद है। नाम का स्वरूप स्पष्ट उदय होने पर चिन्मयरूप भगवान नाम की स्वरूप के साथ एकता करके प्रकट होते हैं।

भक्ति संदर्भ में कहा है,—भगवान्नात्मका एव मंत्राः। तत्रा केवलानि श्री भगवन्नामान्यपि निरपेक्षान्येव परम पुरुषार्थफल पर्यन्त समर्थानि। नामतो मंत्रेपु अधिकारसामर्थ्यमलब्धम्'। भगवान के नाम मात्र सब मंत्र हैं। केवल भगवान के नाम-स्मरण के प्रभाव से भगवद्दर्शनस्वरूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। नाम की अपेक्षा मंत्र अधिक फल प्रदान करने का सामर्थ्य नहीं रखते। मुण्डमाल तंत्र में कहा है—

दुर्गा दुर्गेति दुर्गेति दुर्गा नाम परं मनुम्।
यो जपेत् सततं चण्डि जीवन्मुक्तः स मानवः॥

जो व्यक्ति दुर्गा, इस नाम रूपी श्रेष्ठ मंत्र का जप करता है, हे चण्डि! वह जीवन मुक्त है। रुद्रयामल में दुर्गा नाम माहात्म्य में कहा है—

'नामेदं परमो हेतुर्मुक्तये भवसंगिनाम्' दुर्गा नाम संसारी जीवों को मोक्ष देने वाला श्रेष्ठ उपाय है। कुलार्णव-तंत्र में भी श्री भगवान शिव जी देवी से कहते हैं—

जप यज्ञात् परो यज्ञो नापरोऽस्तीह कश्चन।
तस्माज्जपेन धर्मार्थ काम मोक्षान्श्च साधयेत्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस संसार में जप-यज्ञ की अपेक्षा श्रेष्ठ यज्ञ दूसरा कोई नहीं है। एक जप के द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों की सिद्धि होती है। योगिनी तंत्र में भी कहा है—

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।
प्रसन्ना विपुलान् कामान् दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम्॥

अर्थः—जप द्वारा नित्य स्तुति करने से देवता प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर विविध कामनाओं को पूर्ण करते हैं और शाश्वती मुक्ति प्रदान करते हैं।

ऐसे ही शिव-धर्मतन्त्र-सार में भी लिखा है—

जपनिष्ठो द्विजः श्रेष्ठोऽखिल-यज्ञ फलं लभेत्।
सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलम्॥

अर्थ—जपनिष्ठ ब्राह्मण को सब यज्ञों का फल प्राप्त होता है, सब यज्ञों में इसलिये जपयज्ञ ही महाफलप्रद है। वामन पुराण में लिखा है—

नारायणो नाम नरो नराणाम्, प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्
अनेक जन्मार्जित-पापसंचयं, हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

अर्थात् पृथिवी में नारायण नाम का नरों मे नर प्रसिद्ध चोर है, क्योंकि उसका यह मधुर नाम कान में पड़ने मात्र से मनुष्य के अनेक जन्मों के संचित पापों को हर लेता है अर्थात् भस्म कर देता है। मत्स्य पुराण में भी कहा है—

परदाररतो वापि परापकृति-कारकः।
स शुद्धो मुक्ति माप्नोति हरेर्नामानुकीर्तनात्॥

३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् पर-स्त्री-गामी अथवा दूसरों का अपकार करने वाला पापी भी हरि नाम के कीर्तन से शुद्ध होकर मुक्ति पाता है। कलिसन्तरणोपनिषद् में कहा है—

भगवतः आदि पुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारण
मात्रेण निर्धूत-कलिर्भवति।

अर्थात् श्री भगवान आदि पुरुष नारायण के नामोच्चारण मात्र से कलि का प्रभाव नष्ट हो जाता है। वैशम्पायन संहिता में कहा है।

सर्व धर्म-बहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा।
मुच्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥

अर्थात् सब धर्म परित्यागी और सब पापों का करने वाला मनुष्य यदि श्री हरि के नाम का कीर्तन करेगा, तो उसके सब पाप दूर हो जायेंगे, इस में संदेह नहीं। वत्स! कलियुग के मोहांध जीवों के लिये एक मात्र हरिनाम ही सब पापनाशक है।

नराणां विषयांधानां ममताकुलचेतसाम्।
एक एव हरेर्नाम सर्वपापविनाशनम्॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

अर्थात् विषयासक्त और ममताकुल-चित्त वालों के सब पाप एक हरि नाम द्वारा नष्ट हो जाते हैं। वत्स! हरि नाम की शक्ति सब प्रकार के पापों का हरण करने में इतनी समर्थ है कि मनुष्य सारे जीवन में उतना पाप नहीं कर सकता। नाम के बराबर श्रेष्ठ दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। पापों को नाश करने के लिये मनुष्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चाहे जितने प्रायश्चित्त क्यों न करे, जब तक भक्ति भाव से नाम का आश्रय लेकर नाम जप और कीर्तन नहीं करता, तब तक उसका प्रायश्चित्त पूर्ण नहीं होता। पद्मपुराण में लिखा है—

कीर्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये॥
नान्यत् पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्तनम्॥
सर्वपाप-प्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम॥

अर्थात्—अपरिमेय प्रभावशाली भगवान कृष्ण अथवा विष्णु के नाम कीर्तन द्वारा मनुष्य के सब पाप दूर होते हैं, जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार। हे द्विजश्रेष्ठ! मैं मनुष्यों के सब प्रकार के पापों के नाश के निमित्त हरि कीर्तन के सिवाय दूसरा प्रायश्चित्त नहीं देखता। वत्स! काम कांचन में आसक्त, नाना-विध पाप कर्मों में रत और अनेक प्रकार के भोगों में आसक्त कलि के दुर्बल जीव न तो वेदान्त के ज्ञान के अधिकारी हैं, न अष्टाङ्गयोग के उपयुक्त। तथापि कलियुग के जीवों का भाग्य अच्छा है, क्योंकि सत्ययुग में कठोर तप द्वारा, त्रेता में गंभीर ज्ञान विचार द्वारा, और द्वापर में कष्ट साध्य यज्ञव्रतादि के अनुष्ठानों द्वारा जो श्रेष्ठ पद मिलता था, कलि के जीव एकमात्र भगवन्नाम द्वारा ही उस परम पद को प्राप्त होकर कृतार्थ हो जाते हैं।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्नामैकन्तु कलौयुगे॥ (पराशर)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विष्णुपुराण में कहा है—

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

अर्थात् सत्ययुग में ध्यान-धारणा-समाधि द्वारा, त्रेता में यज्ञ कर्म द्वारा और द्वापर में पूजा अर्चनादि द्वारा जिस पद की प्राप्ति होती है, कलि में केवल केशव के नाम का संकीर्तन करने से ही उस पद की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत् में भी कहा है—

कलेर्दोषनिधेराजन्नस्ति ह्येको महद्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबंधं परं व्रजेत्॥

हे राजन्! कलि के बहुत दोष होने पर भी एक बड़ा गुण है कि एक मात्र कृष्ण नाम के कीर्तन से ही बंधनमुक्त होकर कलियुग के मनुष्य परं पद को पा जाते हैं। हे वत्स! बृहन्नारदीय पुराण में कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलं।
कलौ नास्त्ये व नास्त्ये व नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थात् हरिनाम हरिनाम हरिनाम सार।
कलियुगे ईहा वई गति नां ही आर॥

हिन्दी-अनुवाद—

हरिनाम हरिनाम हरिनाम ही सार है।
कलि मांहि नाम बिन और गति नाहिं है॥

ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे,
येरटन्ति हि नामेदं, सर्वपापं तरन्ति ते॥

अर्थात् हरे राम हरे राम की रटन लगानेवाले सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।

पाण्डव गीता में अत्रि मुनि कहते हैं—

गोविन्देति सदा स्नानं गोविन्देति सदा जपः।
गोविन्देति सदा ध्यानं सदा गोविन्द-कीर्तनम्॥

अर्थात् गोविन्द नाम का ही सदा जप, सदा ध्यान, सदा कीर्तन और गोविंद-नाम से ही सदा स्नान करना चाहिये। इस प्रकार स्नानद्वारा देह का मल धो डालो और गोविंद-नाम के जप-कीर्तनादि द्वारा मन को शुद्ध और पवित्र करलो। वत्स! जिस आनंद की प्राप्ति होने पर दुखों का उदय फिर कभी नहीं होता, चिर कालीन दुखों का अन्त हो जाता है, एवं जीव जन्म-मृत्यु-रहित हो जाता है, उस आनंद-स्वरूप श्रीभगवान के पाने के लिये इस कलियुग में एकमात्र हरिनाम ही श्रेष्ठ साधन है और इस साधन के सिवाय दूसरा कोई सहज उपाय नहीं। हे वत्स! इसलिये निश्चयार्थ 'हरेर्नाम' एक वार कहने की जगह तीन वार कहा है और 'नास्त्येव' भी तीन वार कहा है। वत्स! 'हरि' कहनेसे योगीजनों के ध्येय स्वरूप आत्मतत्त्व को ही समझना चाहिये। "हरति योगिनां चेतांसि, इति हरिः" जो योगियों के चित्त का हरण करता है, उसे हरि कहते हैं। आनंदस्वरूप आत्मा ही तो योगियों के मन का हरण करता है। वे ही योगी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तो 'चित्तवृत्तिनिरोधरूप' योग अथवा समाधि द्वारा आत्मस्थित होकर आनंदमग्न रहते हैं।

बृहन्नारदीय पुराण में कहा है और अग्निपुराण में भी कहा है :—

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
विज्ञाप्य भगवत्तत्वं चिद्घनानन्दविग्रहं।
हरत्यविद्यां तत्कार्यमतो हरिरिति स्मृतः॥

अर्थात् जैसे अनिच्छा पूर्वक अथवा अज्ञान में भी छू जानेपर अग्नि जला देती है, वैसे ही दुष्ट चित्त भी मलिन पापमय मन से स्मरण करने पर 'श्री हरि' स्मरण करनेवाले के पाप नष्ट कर देते हैं। यह हरिनाम चिद्घनानंद-विग्रहरूप भगवत्तत्व को प्रकाशित करके अविद्या और उसके कार्य को नष्ट कर देता है। इसलिये भगवान को हरि कहते हैं। वत्स! राम और कृष्ण इन दोनों नामों का अर्थ भी योगियों का ध्येय आत्मा है। राम शब्द का अर्थ है 'रमन्ते योगिनो यस्मिन् इति रामः' अर्थात् जिसमें योगी जन रमण करते हैं, उस को ही राम कहते हैं। अथवा

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानदे चिदात्मनि।
इतिरामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते॥

जिस अनंत नित्यानंद स्वरूप चिदात्मा परब्रह्म में योगिजन रमण करते हैं, उसे ही राम कहते हैं। कृष्ण शब्द का अर्थ 'कर्षति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगिनां मनांसीति कृष्णः' जो योगियों के मन का आकर्षण करता है, उसको कृष्ण कहते हैं।

अथवा :—

> कृषिर्भूवाचकः शब्दो नश्च निवृत्तिवाचकः।
> तयोरैक्यं परब्रह्म-कृष्णेत्यभिधीयते॥

अर्थात् कृषि भू वाचक अर्थात् सत्तावाचक और न निवृत्ति वाचक है। इन दोनों की एकता को ही परब्रह्म-कृष्ण कहा जाता है। वत्स! मनुष्य की सब वासनाओं की निवृत्ति कैसे हो, जब तक आत्यन्तिक दुख का नाश और परमानंद की प्राप्ति नहीं होती? इसलिये निवृत्ति और आनंद एक ही है। वह आनन्द ही सत्ता-वाचक अर्थात् नित्य है, वही श्री कृष्ण नित्यानंदस्वरूप ब्रह्म है। ब्रह्म संहिता में कहा है—

> ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानंद विग्रहः।
> अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

अर्थात् अनादि सच्चिदानन्दविग्रह श्रीकृष्ण परम ईश्वर-स्वरूप ब्रह्म हैं, वे लीला करने के लिये सर्व प्रथम पुरुषाकार से प्रकट हुए, उन्हें ही आदि कहा है। वे ही गोविंद, वे ही पृथिवी के रक्षक और सब कारणों के कारण हैं।

विशिष्टाद्वैतवादी आचार्य श्रीरामानुज कहते हैं :—

> वासुदेवः परब्रह्म कल्याणगुण संयुतः।
> भुवनानामुपादानं कर्ता जीवनियामकः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् वासुदेव श्रीकृष्ण ही परब्रह्म के स्वरूप, कल्याणादि गुणों से युक्त, जगत् के उपादान कारण और जीवों के नियामक हैं। गौतमी तंत्र में लिखा है:—

कृषि शब्दश्च सत्तार्थो नश्चानन्दस्वरूपकः।
सुखरूपो भवेदात्मा भवानन्दमयस्ततः॥

अर्थात् कृषि शब्द सत्तार्थ वाचक और नकार आनंदस्वरूप और सुखस्वरूप आत्मा है। इसलिये कृष्ण शब्द द्वारा ज्ञाना-नंदमय आत्मा ही समझना चाहिये।

श्रीकृष्णोपनिषद् में दिया है कि 'कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम्' श्रीकृष्ण शाश्वत ब्रह्म ही है। हे वत्स! राम, कृष्ण, हरि प्रभृति नामों के सदृश शिव, दुर्गा, काली प्रभृति नाम भी कलियुग के मनुष्यों के लिये महामंगलप्रद हैं। बृहन्नारदीय पुराण में कहा है—

शिवपूजापरा येतु शिवनामपरायणाः।
त एव शिवतुल्याश्च घोरे कलियुगे द्विजाः॥

अर्थात् द्विजगण घोर कलियुग में शिवपूजन और शिवनाम-परायण होकर शिव तुल्य हो जाते हैं। बृहन्नारदीयपुराण में अन्यत्र और भी कहा है:—

शिवशङ्कररुद्रेशनीलकण्ठत्रिलोचनः।
इतीरयन्ति ये नित्यं नहि तान् बाधते कलिः॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् जो लोग सदा शिवशंकर प्रभृति नामों का कीर्तन भजन करते हैं, कलि का प्रभाव उनका स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्मवैवर्त पुराण में पाया जाता है :—

शिवेति च शिवं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥

अर्थात् जिन के मुख से 'शिव' यह शिवस्वरूप मंगलमय नाम निकलता है, उनके कोटि कोटि जन्मों के संचित पाप निश्चय नष्ट हो जाते हैं। शिवपुराण की धर्म-संहिता में दिया है :—

उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हरहरेति च।
न तेषां नरकाद्भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम ॥

हे मुनिसत्तम! जो लोग 'शिव' यह नाम और 'हर हर' इस नाम का कीर्तन भजन करते हैं, उनको नरक का भय अथवा यम का भय नहीं होता।

वत्स! श्रीकृष्णचैतन्य सदा हरि नाम में और कृष्ण नाम में मस्त रहते थे, उन्होंने भी शिव नाम माहात्म्य में यह कहा है :—

बंगला—सकृत जे जन बोले शिव हेन नाम।
से हो कोनो प्रसंगे ना जाने तत्व तान ॥ १ ॥
सेई क्षणे सर्व पाप हइते शुद्ध हय।
वेद शास्त्रे भागवते एहो तत्त्व कय ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हेन शिव नाम शुनि जार दुःख हय।
सेई जन अमंगल समुद्र भासय॥ ३॥
श्रीवदने कृष्णचन्द्र बोलेन आपनि।
शिव ये ना पूजे से वा मोरे पूजे केने॥ ४॥

चैतन्य भागवते अन्त खंडे श्री चैतन्योक्तिः—

'शिव राम गोविन्द' बलिया गौर राय।
हाते तालि दिया नृत्य करेन सदाय॥ ५॥

हिन्दी भावार्थ—

जो मनुष्य शिव-नाम का एक बार भी उच्चारण करता है चाहे वह उसके तत्त्व को न जानता हो तो भी वह उसी क्षण सब पापों से शुद्ध हो जाता है। वेद, शास्त्र और भागवत सब यही कहते हैं'। जिसे शिव-नाम सुनकर दुःख होता है, वह अमंगल सागर में डूब जाता है। श्री कृष्ण भगवान स्वयं श्री मुख से कहते हैं कि जो शिव की पूजा नहीं करता, वह मेरी पूजा कैसे करेगा। श्री गौरांग महाप्रभु कहते हैं कि हाथों से ताल देकर नृत्य के साथ सदा शिव, राम, गोविन्दादि नामों का कीर्तन करो।

स्कन्दोपनिषत् में है—

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः॥
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् विष्णुस्वरूप शिव को और शिवस्वरूप विष्णु को नमस्कार है। शिव का हृदय विष्णु और विष्णु का हृदय शिव है। जैसे शिवस्वरूप विष्णु हैं, वैसे ही विष्णुस्वरूप शिव हैं।

श्रीमद्देवी भागवत में श्री भगवान विष्णु लक्ष्मीजी से कहते हैं—

शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरं त्रिपुरान्तकम् ॥
उभयोरन्तर नास्ति मिथः संसक्त चेतसोः ॥
नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरं।
भक्ता मम विशालाक्षि! सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥

अर्थात् मैं शिव का प्राणसमान प्रिय हूँ और शंकर मुझे वैसे ही प्राणसमान प्रिय हैं। हमारे दोनों के चित्त दृढ़ भाव से परस्पर मिले हुए हैं, अतएव हमारे अन्दर किञ्चित् मात्र भी अन्तर नहीं। हे विशालाक्षि! जो मेरा भक्त होकर शिव से द्वेष करता है, उसका निश्चय ही नरक में गमन होता है, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

सब नामों में एक ही अखण्ड तत्त्व

वत्स! भगवद्भाव के लिये साम्प्रदायिकता के तुच्छ भावों को मन में स्थान देना उचित नहीं है। सब को यह जान लेना चाहिये कि एक शास्त्र में जिसको कृष्ण कहा है, अन्य शास्त्रों में उसी को शिव, उसी को राम, उसी को दुर्गा, उसी को काली या तारा अथवा त्रिपुरा कहा है। सब शास्त्र एक ही का प्रदर्शन कर रहे हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ।
येरुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम् ॥
यथा शिवस्तथा दुर्गा या दुर्गा विष्णुरेव सः ।
देवी-विष्णु-शिवादीनामेकत्वं परिचिन्तयेत् ॥
भेदकृन्नरकं याति रौरवं नात्र संशयः ।

अर्थात् हरि की भक्ति कें साथ पूजनादि करनें पर उससे ही शिव का पूजन भी हो जाता है। जो रुद्र को नहीं जानते वे केशव को भी नहीं जान सकते। शिव दुर्गा, विष्णु प्रभृति में परस्पर कोई भेद नहीं। देवी, विष्णु, शिव, प्रभृति में एकत्व की भावना रखनी चाहिये। यदि एकत्व की भावना से सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती, तो शोक मोह के पार कैसे उतरा जा सकता है।

"कः शोकः को मोह एकत्वमनुपश्यतः"। शिव, राम, दुर्गा, काली, कृष्ण में भेद देखने वाले रौरव नरक में जाते हैं यह निःसंशय सत्य है।

श्रीमद्देवी भागवत में श्री कृष्ण का एक नाम गोपाल-सुंदरी है। गोपाल सुन्दरी ही तेजोमयी वरणीया गायत्री है, वही रघुनाथ, वही ब्रह्मा और वही शिव है।

भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ।
गायत्री त्वं यद् ब्रह्मेति ब्रह्मविदो विदुस्ताम् ॥

वत्स ! नारायण हरि, कृष्ण, राम, विष्णु, शिव, शंकर, दुर्गा, काली इत्यादि सब रूप और नाम के बीच एक अखण्ड चैतन्य सच्चिदानंद ब्रह्म अथवा परमात्मा वर्तमान है। कोई भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाम समस्त प्रयोजनों की सिद्धि करने का सामर्थ्य रखता है, इसलिये सब नामों का मूलतः अभिन्न रूप से एक ही अर्थ है। 'हरिभक्ति विलास में पुलस्त्य ऋषि की उक्ति है कि—

सर्व्वार्थशक्ति-युक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः।
यथाभिरोचते नाम तत् सर्वार्थेषु कीर्त्तयेत्॥
सर्व्वार्थं सिद्धि माप्नोति नाम्ना मेकार्थता यतः।
सर्व्वाण्येतानि नामानि परस्य ब्रह्मणो हरेः॥

अर्थ—समस्त वस्तु के आधार देवादिदेव विष्णु के जिस नाम में रुचि हो उसी नाम का कीर्तन सब कार्यों में करना चाहिये, क्योंकि सब नामों में एक ही तत्व आश्रयभूत है और क्योंकि ये सब नाम परब्रह्म हरि के ही हैं, इसीलिये उसके किसी भी नाम के कीर्तन द्वारा अभीष्ट की सिद्धि होती है। शिव महिम्नस्तव में कहा है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात तीनों वेद, सांख्य, योग, तन्त्र और वैष्णवशास्त्र, में कथित भिन्न २ मार्गों में से अपने २ संस्कारानुसार रुचिभेद से श्रेष्ठ और हितकर जानकर चाहे किसी भी सरल अथवा कठिन मार्ग के साधन में लग जाय। हे प्रभो, तो भी, जल जैसे भिन्न २ सीधे अथवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

टेढ़े रास्तों से जाकर अन्त में समुद्र में ही पहुँचता है, वैसे ही एक मात्र तू ही सब मनुष्यों की एक गति है।

वत्स ! उस अखण्ड चैतन्यस्वरूप तत्व को ही भक्तजन भगवान, योगी परमात्मा और ज्ञानी सच्चिदानन्दब्रह्म कहते हैं।

वदन्ति तत्तत्व-विदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥(श्रीमद्भागवत)

वत्स ! सब नाम और मंत्रों में सगुण और निर्गुण भाव निहित है। ब्रह्म एक अद्वितीय है परन्तु अपनी इच्छा से अपनी माया के वश उसने नाना नाम और रूप प्रकट किये हैं; जैसे गंगा एक है, किन्तु उसमें उतरने के लिये घाट बहुत से हैं। जिसको जो घाट अच्छा लगता है, उस पर जाकर गंगा में उतर कर जलपान करके प्यास की निवृत्ति कर लेता है और अपने प्राणों को शीतल करता है। जलपान करना ही तो उद्देश्य है, घाट को पसन्द करना अपने उतरने की सुविधा के लिये है, इसके अतिरिक्त तो दूसरा उद्देश्य नहीं। अपनी पसन्द के अनुसार जिसको जिस घाट की इच्छा होती है, वहाँ जाकर गंगा में उतर कर जलपान करता है। जलपान करने से तृषा-निवृत्ति सब को बराबर ही होती है, उसी तरह नित्य आनन्द-स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है, तब ब्रह्मस्वरूप गंगा में उतरने के लिये और आनन्द-प्राप्त करने के लिये ब्रह्मरूपी गंगा के अनन्त नाम और रूप विशिष्ट घाटों में से जिसको जो पसन्द आवे, वह उसी घाट को अर्थात् नामरूप के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आश्रय को ग्रहण करके ब्रह्मरूपी गंगा में उतरे अर्थात् ब्रह्मभाव में डूब जाय, उसमें तन्मय हो जाय और परमानन्द लाभ करे। इस ब्रह्मानन्द, नित्यानन्दकी प्राप्ति से दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति सबको एक समान होगी, किसी को फिर दुःख नहीं व्यापेगा और कोईभी दुःख फिर नहीं उदय होगा। मनुष्य की अनादि काल की प्यास, जन्म जन्मातर की तृष्णा केवल इस एक ब्रह्मानन्द अथवा नित्यानन्द की प्राप्ति के द्वारा ही मिटेगी, अन्य किसी के द्वारा नहीं मिट सकती।

वत्स ! तुम उस सच्चिदानन्दस्वरूप के अनन्त नामों में से कोई भी नाम लेकर उसको पुकारते क्यों नहीं, अथवा उसके नाम का कीर्तन क्यों नहीं करते ? नामजप या कीर्तन के समय जिसका ध्यान करते हो, तब तुम इस देह-मन्दिर में अपने ही चैतन्यरूपी ठाकुरजी को पुकारते हो अर्थात् तुम जिसको पुकारते हो वह सच्चिदानन्दस्वरूप तुम्हारे इस देह-मन्दिर में ही विद्यमान है; वही तुम्हारी अहंबुद्धि का विषय चैतन्यस्वरूप आत्मा है। वह वाणी और मन के अगोचर होते हुए भी भावग्राही, प्राणों का देवता भावुकों के भाव से आकर्षित होकर दर्शन प्रदान करके साधक को कृतार्थ करता है—यह ध्रुव सत्य है।

भक्त रामप्रसाद ने गाया है—"सेये भावेर विषय, भाव व्यतीत अभावे कि धरते पारे ?" अर्थात् वह जो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भाव का विषय है, भाव शून्य अभाव में क्या पाया जा सकता है?

अहा! वह तो बहुत दूर नहीं, अति निकट से भी निकट है, वह इतना निकट है कि तुम्हारा देह, मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ भी नहीं हैं। तुम किसकी सत्ता से सत्तावान होकर, किसके अस्तित्व से अस्तित्व वाले होकर, कहने में आनन्दित होते हो कि "मैं हूँ।" इस विषय पर एक बार ध्यान पूर्वक विचार करो कि वह क्या है? तुम्हारे विचार करने के समय वह कहाँ है? तुम जो इस दृश्य-प्रपंच के चिन्तन में मग्न हो, तुम जो इस जगत के विभिन्न नामरूपों में फँस रहे हो, उसी नामरूप के पीछे वह छिपा हुआ, उस नाम-रूप को प्रकाशित कर रहा है, क्या तुमने उसका ध्यान किया? क्या उसको देखने की चेष्टा की?

तुम पुत्र का सुन्दर मुख देखकर, पत्नी के सुन्दर वदन का अवलोकन कर, इस बाग के सुन्दर फूलों को देखकर आनन्द में अपने आपको भूल जाते हो। किन्तु हाय! तुम्हारे निकट पुत्र, पत्नी और फूल के आकार में कौन उपस्थित है? इस सौन्दर्य का सृष्टि-कर्ता कौन है? इन नाम रूपों में कौन है? किससे वह सौन्दर्य अनुभव के उपयुक्त हुआ है? इन सब नामरूपों में वही प्रकाशित है, यह तुमने नहीं सोचा, नहीं देखा। तुम तो केवल स्त्री, पुत्र परिवार जनों की दैहिक आवश्यकता को पूरा करने की चिन्ता में दिन रात व्यग्र रहते हो, तुमको अवसर कहाँ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तोते पत्ती की तरह कितनी बार पुस्तकों की विद्या पढ़कर, बड़े २ दार्शनिकों की कुछ बातें कंठस्थ करके, 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इत्यादि कह कर, जगत को उड़ा देने की चेष्टा करते हो, परन्तु दूसरे क्षण में फिर उसी मिथ्या जगत और भ्रान्ति का आश्रय लेकर पागल हो जाते हो। जिसके आश्रय पर यह सुन्दर जगत प्रतिभासित हो रहा है, जिसके क्षणिक बहिः सौन्दर्य से मुग्ध होकर तुम उस परम सुन्दर को भूल गये हो, वह है तुम्हारा ही 'मैं' बुद्धि का आश्रयभूत 'सच्चिदानन्द ब्रह्म'। वही तुम्हारा आत्मा, वही तुम्हारा 'मैं' है, किन्तु तो भी तुम उसे देख नहीं पाते, अनुभव नहीं करते।

जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने पर भी जल की मलिनता और चञ्चलता के कारण वह दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी तरह तुम्हारा मन ऐहिक और पारलौकिक भोगवासनाओं में आसक्त, पापों से कलुषित और पाप-चिन्ता, अनात्म-चिन्ता, विषय-चिन्ता से चञ्चल रहता है, इसी लिये वह परम सुन्दर परमानन्द स्वरूप परमात्मा तुम्हारे इस देह-मन्दिर में रहता हुआ भी तुमको दर्शन नहीं देता, तुम उसका अनुभव नहीं कर पाते।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान कहते हैं—

'विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः' अर्थात् दृष्टादृष्ट विषयभोगों में जिनका चित्त आकृष्ट है, ऐसे मूढ़ जन अन्तरस्थ आत्मा को नहीं देख सकते, किन्तु ज्ञान-नेत्र-युक्त महात्मा उसको

४

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् 'अहम्' बुद्धि के विषय चैतन्यरूपी आत्मा को, सच्चिदानन्दब्रह्म को इसी देह में अनुभव करते रहते हैं।

वत्स! आत्मदर्शन अथवा श्रीभगवद्दर्शन करने में प्रतिवन्धक जो चित्त की मलिनता है, उसे दूर करने के लिये, झाड़ बाहर करने के निमित्त श्रीगुरुप्रदत्त उपासना रूपी यह जप-साधन है। जबतक प्रतिवंधक दूर नहीं होते, तबतक अभिमान छोड़कर भक्तिभाव से सदा उसका नाम जपते रहो।

जप-विधि

वत्स, वाचिक और मानसिक भेद से जप दो प्रकार का है, उनमें मानसिक जप अर्थात् मन ही में जप करना, अथवा नाम स्मरण करना श्रेष्ठ है। याज्ञवल्क्य-स्मृति में कहा है—

जपश्च द्विविधः प्रोक्तो वाचिको मानसस्तथा।
वाचिको पांशुरुच्चैश्च द्विविधः परिकीर्त्तितः॥

अर्थ—वाचिक और मानसिक भेद से जप दो प्रकार का है, उनमें फिर उपांशु और उच्च भेद से वाचिक जप भी दो प्रकार का है—

उच्चैर्जपादुपांशुश्च सहस्रगुण उच्यते।
मानसश्च तथोपांशोः सहस्रगुण उच्यते॥

अर्थ—ऊंचे स्वर से जप करने की अपेक्षा उपांशु जप सहस्रगुण अधिक फल देनेवाला होता है और उपांशु जप की अपेक्षा मानस जप सहस्रगुण श्रेष्ठ है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वत्स ! मन्त्रार्थ स्मरण-पूर्वक मन में जप करने को मानस जप कहते हैं और अपने उपास्य-देव के ऊपर मन लगा कर जिह्वा और होंठ कुछ हिलते हुए केवल स्वयं ही शब्द सुन सकें, इस प्रकार जो मंत्र या नाम का जप किया जाता है, उसको उपांशु जप कहते हैं। जो मंत्र-जप अथवा नाम-स्मरण दूसरों को सुन पड़े, उसको उच्चस्वर का जप कहते हैं। विशुद्धेश्वर तन्त्र में दिया है कि—

निजकर्णा गोचरोऽयं सजपो मानसः स्मृतः।
उपांशु निजकर्णस्य गोचरः परिकीर्तितः॥
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा स जपो वाचिकः स्मृतः।
उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः॥
जिह्वाज्जपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः॥

अर्थ—अपने कान भी न सुन सकें, ऐसा जप मानस कहलाता है और अपने कान ही सुन सकें अन्य के श्रवण गोचर न हो, ऐसे जप, को उपांशु कहते हैं। वाणी द्वारा ऊँचे स्वर से जो मंत्रोच्चारण होता है, वह वाचिक जप कहलाता है। ऊँचे स्वर से जप करने की अपेक्षा उपांशु जप दसगुना अच्छा है, जिह्वा से किया हुआ जप सौ गुना और मानसिक जप सहस्र गुना श्रेष्ठ है।

वत्स ! केवल जिह्वा द्वारा जो जप किया जाता है, उसको जिह्वा का जप कहा है। इस जप में केवल जिह्वा ही हिलती है किन्तु होंठ नहीं हिलने चाहिये अर्थात होंठों को बंद रखना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वत्स ! तन्त्रान्तर में लिखा है—

उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः ।
उत्तमो मानसो देवि ! त्रिविधः कथितो जपः ॥

अर्थ—ऊंचे स्वर का जप अधम है, उपांशु जप मध्यम और मानसजप उत्तम माना गया है। हे देवि इस तरह जप तीन प्रकार के होते हैं। वत्स ! इन कहे हुए जपों से भिन्न एक 'सुषुम्णाजपं' भी जपका एक प्रकार है। वह श्रीगुरु मुख से ही जाना जाता है, उसके अनुसार जप करनेपर उसके द्वारा शीघ्र मन के ऊपर प्रभुत्व प्राप्त होता है अथवा बहुत जल्दी मनकी चंचलता दूर होकर मन में स्थिरता आती है।

गौतमीय तन्त्र में दिया है—

सौषुम्णा ध्वन्युच्चारिताः प्रभुत्वं प्राप्नुवन्तिते ।
मंत्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि च विभावयेत् ॥

अर्थ—सुषुम्णा ध्वनि में अर्थात् सुषुम्णा मार्ग में उच्चारित मंत्र का जप करने से मन पर प्रभुत्व प्राप्त होता है। मन्त्राक्षरों को चैतन्यरूपिणी शक्ति में अर्थात् कुण्डलिनी-शक्ति में ग्रथित ध्यान करना चाहिये—यह गुरूपदेशगम्य है।

जप के प्रारम्भिक कर्तव्यों के संबंध में श्री शिवजी महाराज 'तन्त्रसार' में कहते हैं कि—

मनः संहृत्य विषयान्मन्त्रार्थगतमानसः ।
नद्रुतं न विलम्बञ्च जपेन्मौक्तिकहारवत् ॥

अर्थ—विषयों से मन हटाकर मन्त्र के अर्थ में, अर्थात् इष्ट

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवता के रूपादि के ध्यान में मन लगा कर मंत्र का जप करना चाहिये। मोतियों की माला में जैसे एक के पीछे दूसरी मणिका आती है, उसी तरह एक बार स्पष्ट उच्चारण करने के पश्चात् दूसरी वार मन्त्रोच्चारण करना चाहिये, न जल्दी न विलम्ब से ध्यान के सहित जप करने से शीघ्र सिद्धि होती है। 'फेत्कारिणी तन्त्र' में दिया है—

'जप ध्यान समायुक्तः शीघ्रं सिद्ध्यतिमन्त्रवित्।'

एक मात्र जप के द्वारा ही सिद्धि होती है, यह सब शास्त्रों का मत है, किंतु विधि पूर्वक मंत्र या नाम का उपदेश श्री गुरु से ग्रहण करके 'नाम' के दस प्रकार के अपराधों का त्याग करते हुए जप करना चाहिये। दस अपराध ये हैं—

(१) परनिन्दा, (२) हरिहर और देव देवी में भेद दृष्टि रख कर उनकी निन्दा चर्चा आदि; (३) श्रुति (वेद) स्मृति (धर्मशास्त्र); तंत्र, पुराण और दर्शन शास्त्रों में अविश्वास; (४) श्रीगुरु और उनके वचनों में अविश्वास, (५) नाम के माहात्म्य में अविश्वास; (६) नाम लेते समय नाम के भरोसे निषिद्ध कार्य करना; (७) नाम के भरोसे नित्य कर्म सन्ध्या-वन्दनादि का त्याग करना; (८) वर्णाश्रम धर्म का परित्याग करना अर्थात् पालन न करना; (९) अपने नाम-साधन के साथ दूसरों के साधन की तुलना करना; (१०) शास्त्र-निषिद्ध आहार करना।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति का स्वरूप

श्रीभगवान में जिन लोगों की भक्ति है, उन्हीं को नाम में रुचि होती है। भक्ति वैराग्य और ज्ञान की जननी है। श्रीमद्भागवत में कहा है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम्॥

अर्थात्—वासुदेव भगवान में भक्ति-योग के प्रयोजित होनेपर शीघ्र ही वैराग्य और ज्ञान का उदय है।

भक्ति क्या है, यह सरल भाषा में कहें तो कहना पड़ेगा किभगवान् की ओर प्राणों का तीव्र आकर्षण ही भक्ति है, अर्थात् श्रीभगवान की ओर दौड़नेवाली चित्त की वृत्ति-विशेष भक्ति-पदवाच्य है। अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिये, वासनाओं की पूर्ति के लिये और भोगविलासकी प्राप्ति के लिये जो इच्छा, चेष्टा अथवा प्रयत्न होता है, वह 'काम' कहलाता है और वह इच्छा, चेष्टा और प्रयत्न जब केवल अपने प्रियतम अभीष्टदेव श्रीभगवान की तृप्ति के लिये लगा दिये जाते हैं, तब वह 'काम' ही भक्ति में परिणत होता है। श्री चैतन्य चरितामृत में सरल बंगला भाषा में यही बात इन शब्दों में कही गई है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् अपनी इन्द्रियों की तृप्ति की इच्छा को काम कहते हैं और कृष्ण को प्रसन्न करने की इच्छा का नाम प्रेम है।

स्नेह, प्रेम श्रद्धा इत्यादि की वृत्तियाँ मनुष्य में स्वाभाविक होती हैं। पुत्र के प्रति स्नेह, पत्नी के प्रति प्रेम, माता-पिता गुरुजनों के प्रति श्रद्धा और बन्धुजनों के ऊपर स्नेह प्रगट करने में मनुष्य को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मनुष्य की ये सब स्वाभाविक वृत्तियाँ श्री भगवान में समर्पण होनेपर ही उनकी भक्तों में गणना हो सकती है। भक्त चूड़ामणि प्रह्लाद इसी अभिप्राय से —

या प्रीतिरविवेकिनां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मामपसर्पतु ॥ वि पु०

अर्थ—विषयासक्त अविवेकियों की इन्द्रियों के विषयों में अपावनी प्रीति अर्थात् आसक्ति जैसी प्रबल रहती है, हे दीनानाथ, तुम्हारा स्मरण करते हुए मेरे हृदय से वैसी ही प्रीति कभी लुप्त न हो। विषय भोगों में आसक्त मनोवृत्ति श्री भगवान में समर्पण कर देने पर वही विषय-मलिन मनोवृत्ति मनुष्य को श्री भगवान का अपना जन बना कर भक्तिराज्य का अधिकारी बना देती है।

हे वत्स! विषय भोगों में आकर्षित होने की तुम्हारी जो प्रवृत्ति है, वही आसक्ति कहलाती है। जो लोग घोर विषयी हैं वे विषयों की बातों को छोड़ विषयों के ध्यान के बिना एक क्षण भी नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रह सकते। वैसे ही जो भगवान के भक्त हैं, वे श्री भगवान की कथा, वार्ता और ध्यान के बिना एक मुहूर्त भी नहीं रहते। जिसके प्रति, जिस वस्तु के प्रति, जिसकी जैसी तीव्र चाह व जैसा आकर्षण होता है, उसके लिये उसकी भावना भी उतनी होती है। किसी वस्तु के लिये जो आकर्षण होता है, वही उस वस्तु की चिन्ता में मन को प्रेरित करता है।

वत्स! विचार कर देखो कि दूसरे घर से आई हुई देवी का ध्यान करने के लिए, जिसको तुमने अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया है, तुमको कौन प्रेरित करता है? जिन माता पिता से इस संसार में आए हो, उनके लिए तो तुम्हारा इतना आकर्षण नहीं। हाँ, आकर्षण तो सब वस्तुओं में ही है, परन्तु स्त्री, पुत्र कन्या में जितना आकर्षण है उतना आकर्षण और किसी में नहीं। अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्रियों की जितनी चिन्ता है, उतनी चिन्ता और किसी की नहीं। उनके सुख के लिये उनकी तृप्ति करने के लिये, उनके न कहने पर भी तुम क्या नहीं करते, उनके मंगल के लिये कितनी चिन्ता करते हो? वे लोग तो अपने लिये चिन्ता करने को तुमसे नहीं कहते, तो भी उनके लिये चिन्ता किये बिना तुम नहीं रह सकते। उनकी चिन्ता नाना प्रकार से उत्पन्न होकर तुमको कितना दुःख देती है, तथापि उनकी चिन्ताओं में ही तुम मस्त रहते हो, और उनकी चिंता ही तुमको आनंद देती है।

तुमको किसने उनकी यह चिन्ता बिना मांगे सिखाई है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बताओ तो हे वत्स ! उनके लिये यह जो तुम्हारी प्राणों की लगन, आसक्ति या मोह है, वहीं तुमको उनके लिये नाना प्रकार से चिन्ता-ग्रस्त किये रखती है, चिन्ताओं में डुबाए रखती है। हाय क्षणिक सुख के लिए, क्षणिक आनन्दलाभ के लिये ही तो तुम पागल हो रहे हो, परन्तु नित्यानन्दस्वरुप भगवान के लिये पागल क्यों नहीं होते ?

हे वत्स ! स्त्री पुत्रादि और विषयों के प्रति जो तुम्हारी इतनी लगन है, उसका कारण उनके प्रति तुम्हारी गहरी ममता बुद्धि है। जहाँ यह "मेरेपन" का बोध नहीं होता, वहाँ प्राणों की लगन भी नहीं रहती, आसक्ति नहीं रहती और कोई कर्तव्य-बुद्धि भी नहीं रहती।

अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥ मनु० २-४

अर्थात्—कामना रहित कार्य प्राय: नहीं देखा जाता, बिना कामना के किसी कर्म में भी प्रवृति नहीं होती।

जन्म जन्मान्तरों के बड़े पुण्यप्रताप से, सुकृत कर्मों के परिणाम स्वरूप श्रीगुरुकृपासे मनुष्य जब इतना समझने लगे कि हमारा एकमात्र अपना श्री भगवान है, हमारा कहने से वही एकमात्र है, जब मनुष्य को श्री भगवान के प्रति ऐसा तीव्र आकर्षण बढ़े, उसी को भक्ति कहते हैं। गोपालपूर्वतापिनी उपनिषद् में कहा है—'भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधि नैराश्येनामुष्मिन् मनः कल्पनमेव' इहलोक की और परलोक की फल-कामना का परित्याग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करके श्री भगवान् में चित्त समर्पण करने को भक्ति कहते हैं। "एतदेव च नैष्कर्म्यम्" इस प्रकार की भक्ति को ही नैष्कर्म्य—निष्काम भाव अर्थात् संन्यास कहा जाता है।

'भज्' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से 'भक्ति' शब्द बनता है, इसलिये 'भक्ति शब्द का अर्थ पूज्यों के प्रति अनुराग होता है। महर्षि अङ्गिरा कहते हैं—

"सानुरागरूपा, स्नेहप्रेमश्रद्धातिरेकादलौकिकेष्वनुरागरूपा"

अर्थात् स्नेह, प्रेम और श्रद्धा स्वरूपत्रिविध लौकिक विषय-मलिन और नश्वर अनुराग से भिन्न परमेश्वर के प्रति जो असाधारण और अलौकिक अनुराग है, उसको भक्ति कहते हैं। व्यास संहिताकार कहते हैं—'ॐ पूजादिष्वनरागः' श्री भगवान के पूजादि में अनुराग होने को भक्ति कहते हैं। महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं— सापरानुरक्तिरीश्वरे' ईश्वर में परम अनुराग ही भक्ति है। महर्षि गर्गाचार्य कहते हैं— "ॐ कथादिष्वनुरागः" अर्थात्—श्रीभगवान की कथाओं में जो अनुराग होता है, उसे भक्ति कहते हैं। भक्ति-दर्शन के सूत्रकार महर्षि नारद कहते हैं "सात्वस्मिन् साकस्मैचित् परम प्रेम रूपा" अर्थात् अनिर्वचनीय भगवान में परम प्रेम का होना भक्ति कहलाता है। गरुड़-पुराण के २३१ अध्याय में कहा है।

भज इत्येषवै धातुः सेवायां परिकीर्तितः।
तस्मात् सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिः साधनभूयसी॥

अर्थात् भज धातु का अर्थ सेवा के लिये किया जाता है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसलिये पण्डित लोग सब साधनों में श्रीभगवान की सेवा को ही श्रेष्ठ भक्ति कहते हैं। नारद पंचरात्र में कहा है—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेन हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते॥

अर्थात्—सब प्रकार की भावना रूपी उपाधियों से मुक्त भगवत्परायणता के भाव से निर्मल मन द्वारा हृषीकेश भगवान की सेवा करना ही भक्ति है। श्रीपाद रूप गोस्वामी भक्तिरसामृत-सिंधु में कहते हैं—

अन्याभिलषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

अर्थात् सब अभिलाषाओं का त्याग करके ज्ञान कर्म से विरहित होकर मनसा वाचा कर्मणा श्री भगवान् की सेवा करना उत्तम भक्ति है।

श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है—

'गुरूपदिष्टमंत्रवती भक्तिशास्त्रोक्तविधानानुसारिणी अन्याभिलषिताशून्याज्ञानकर्मादिरहिता।'

श्रोत्रादि इन्द्रियगण के अनिमित्त स्वाभाविकी, श्री भगवान में आनुकूल्यमयी वृत्ति ही उत्तम भक्ति है।

श्री कविराज गोस्वामी ने श्री चैतन्य चरिता-मृत में इसका अर्थ बंगला में किया है कि

अन्य वांछा अन्य पूजा छाड़ि ज्ञान कर्म।
आनुकूल्ये सर्व्वेन्द्रिये कृष्णानुशीलन॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिन्दी अन्य वाञ्छा अन्य पूजा छांड़ि ज्ञान कर्म।
स्वानु कूल सब इन्द्रियन ते कृष्णानुशीलन्॥

उत्कृष्ट भक्ति का प्रसंग करते हुए भक्त-शिरोमणि महा महोपाध्याय विश्वेश्वर सरस्वती कह गये हैं—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतांगताः।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

अर्थात्—श्री भगवान के गुणानुवाद श्रवण करते २ द्रवीभूत हो कर चित्त जब सर्वेश्वर श्री भगवान की ओर तैलधारावत् बहने लगे, तब चित्त का वह भाव उत्कृष्ट भक्ति कहलाता है।

भागवत के ऋषि भक्ति का स्वरूप बताते हुए सच्चिदानन्द श्री भगवान के मुख द्वारा कहलाते हैं—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

अर्थात्—पतितोद्धारिणी जाह्नवी की पवित्र धारा जैसे निरवच्छिन्न भाव से अपने लक्ष्य स्वरूप समुद्र में गिरकर आत्म-विसर्जन करती है, उसीतरह सब प्राणियोंके हृदयोंमें स्थित अन्तर्यामी 'अविभक्तं विभक्तेषु' 'सर्वभूतस्थितंमां' अविभक्त रूप से सब भूतों में पृथक २ स्थित मुझ में, मेरे गुणों के श्रवण से उत्पन्न भक्तों के चित्त की जो निरवच्छिन्न धाराप्रवाह वृत्ति लीन हो कर आत्म विसर्जन करती है, वही अहैतुकी, कारण-रहित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्गुण भक्ति कही जाती है। यही सर्वोत्तम आदर्श-भक्ति का लक्षण है। भगवान जगद्गुरुश्रीमच्छङ्कराचार्य कहते हैं—

स्व स्वरूपानु-संधानं भक्तिरित्यभिधीयते"

अर्थात् अपने आत्म स्वरूप के अनुसन्धान को भक्ति कहते हैं। कुलार्णव-तन्त्र में कहा है—

वैराग्योपरतिर्यत्र प्रेम-निर्वाण-बृंहितम्।
वैभवञ्च सदा देवि सा भक्तिः परिगीयते॥

अर्थात् भक्ति के उदय के साथ २ प्रेम वैराग्य और उपरति उत्पन्न हो कर निर्वाण अर्थात् मुक्तिरूप परम समृद्धि प्राप्त हो उसको भक्ति कहते हैं। पीठमाला तंत्र में महादेव कहते हैं—'सा भक्तिर्मुक्ति करी' अर्थात्-भक्ति के द्वारा ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान में स्थित हो कर मुक्ति मिले, वही भक्ति है। श्रद्धा के तारतम्य अनुसार भक्ति के अधिकारी तीन प्रकार के हैं।

वंगला श्रीचैतन्य चरितामृत में कहा है—

शास्त्रयुक्ति सुनिपुण दृढ़ श्रद्धा जार।
उत्तम अधिकारी सेई तार ये संसार॥
शास्त्र युक्ति नाहि जाने दृढ श्रद्धावान।
मध्य अधिकारी सेइ महा भाग्यवान॥
याहार कोमल श्रद्धा सेइ कनिष्ठ जन।
क्रमे २ तिहो भक्त हो इबे उत्तम॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिन्दी अनुवाद—

शास्त्रयुक्ति-सुनिपुण अति, दृढ़ श्रद्धायुत होइ।
उत्तम अधिकारी सोई भवसागर तर सोइ॥
शास्त्र युक्ति जाने नहीं, पर दृढ़ श्रद्धा-वान।
मध्यम अधिकारी सोई, वह महा भाग्यवान॥
मृदु श्रद्धायुत पुरुषजो, सब भक्तों में हीन।
क्रमानुसार अधिकारमें, भगत कहे ये तीन॥

अर्थ—"श्रद्धावान मनुष्य ही उत्तम भक्ति का अधिकारी है, श्रद्धा की तारतम्यतानुसार अधिकारी का तारतम्य होता है, साधुसंग में जिनको सकाम कर्माधिकारी के सदृश विषयों में अति आसक्ति नहीं और मोक्ष कामना वाले ज्ञानाधिकारी के सदृश ऐहिक और पारलौकिक सुख-भोगों से अतिशय वैराग्य नहीं, जो केवल कृष्ण भक्ति करने से ही सब कर्म न करने पर भी सब कर्म कर लिये, ऐसे दृढ़ विश्वास से श्रवणकीर्तनादि में लगे रह कर भक्ति करते हैं, वे श्रद्धालु कहलाते हैं। जो शास्त्र और शास्त्रानकूल युक्तियों में खूब निपुण हैं, अर्थात् भक्ति-विरुद्ध बलवती बाधा उपस्थित होने पर उसका खण्डन करके भक्ति की मर्यादा की रक्षा करने में समर्थ हैं, तत्त्व-विचार, साधन विचार और पुरुषार्थ के विचार द्वारा दृढ़ श्रद्धा संपन्न हैं, वे ही उत्तम अधिकारी कहलाने योग्य हैं। जो शास्त्र-युक्तियों में निपुण पुरुष की तरह बलवती बाधा उपस्थित होने पर उसका खण्डन करके भक्ति की मर्यादा को स्थापित करने में असमर्थ हैं परन्तु भक्ति में दृढ़ श्रद्धा रखते हैं, वे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मध्यम अधिकारी हैं। और जो शास्त्र-युक्तियों में अनिपुण और थोड़ी श्रद्धा युक्त हैं, वे कनिष्ट अधिकारी हैं। भक्ति रसामृत-सिन्धुविन्दु से संग्रहीत।

"लौकिकी श्रद्धायुक्त भगवत् प्रतिमा—सेवकको कनिष्ट भगवत् भक्तों में भी कनिष्ट जानना होगा। ये कनिष्ट भगवद्भक्तों में कनिष्ट भगवद्भक्त भी कालान्तर में बड़े भगवद्भक्त हो जायेंगे। भजन करते २ जब प्राणि-मात्र में आदर-बुद्धि उत्पन्न हो जाय, तब शीघ्र फल मिलता है। इसलिये यथाकथञ्चित् भजन में अवश्य कुछ फल मिलेगा ही". (भक्ति सन्दर्भ में) "ऐश्वर्यदर्शी विधि-मार्ग प्रिय अनुग्राही भक्त भी मध्यम भक्त हैं। जिनको सब प्राणियों में भगवद्भाव और सब प्राणियों में भगवत्तत्व के दर्शन होते हैं, वे ही उत्तम भक्त हैं। ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों ही भगवान के गुण हैं। विधिपूर्वक भक्ति द्वारा ऐश्वर्यात्मक भगवान की, और रुचिपूर्वक भक्ति द्वारा माधुर्यात्मक भगवान की प्राप्ति होती है। रुचि-मार्ग द्वारा हरि-भजन करने वाला श्रेष्ट है। दोनों में भगवत्कर्मता है, इसलिये दोनों ही सार्थक हैं।" (गोविन्द भाष्य) श्रीमद्भागवत में सर्वोत्तम भक्त के लक्षण इस प्रकार कहें हैं।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

अर्थः—जो अपने उपास्य श्री भगवान को चराचर समस्त जीवों में देखता है और चेतन अचेतन समुदाय भूतगणों को

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री भगवान में देखता है, वही उत्तम भगवद्भक्त है।

श्रीमद्भगवद्गीता में इसी प्रकार भगवद्भक्त को 'योगयुक्तात्मा' कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः॥

अर्थात् एकाग्र-चित्त योगी सब प्राणियों में समदर्शी होते हैं, वे सब प्राणियों को आत्मा में समभाव से देखते हैं और आत्मा का भी सब प्राणियों में समभाव से दर्शन करते रहते हैं।

मिथिला-राज महाराज निमि के प्रश्नों के उत्तर में परम भागवत कवि ने भी इसी भाव की प्रतिध्वनि की है। "खंवायुमग्निं सलिलं महीञ्च, ज्योतींषि सत्वानि दिशोद्रुमादीन्। सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥ "अर्थात्—उत्तम भगवद्भक्त को आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारकादि ज्योतियाँ, दिशा, वृक्ष, सरोवर और समुद्रादि जो कुछ पदार्थ है, सब को श्रीहरि का शरीर जानकर अनन्य मन से प्रणाम करना चाहिये।

वत्स! श्री भगवान में जब ऐसी उत्तम भक्ति उत्पन्न होती है, तब स्वभावतः समस्त दृश्य प्रपंच के मिथ्या ज्ञान से वितृष्णा उत्पन्न होती है, वैराग्य का उदय हो जाता है और फिर वही भक्ति भगवान के स्वरूप का ज्ञान उत्पन्न करा देती है।

ज्ञानावतार भगवान श्रीमच्छंकराचार्य कहते हैं—'मोक्षकारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी' अर्थात् आत्मदर्शनप्राप्ति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के निमित्त जितने प्रकार के साधन हैं; उन सब में भक्ति ही श्रेष्ठ है।

वत्स ! त्रिविध तापों से संतप्त संसार-सागर में डूबते हुए कलिकलुषकालिमाकलङ्कित मनुष्यों को सहज, सरल ; और सुन्दर भक्ति योगाश्रय के अतिरिक्त उद्धार करने वाला दूसरा सुखसाध्य उपाय नहीं। अधिकारी हो अनधिकारी हो प्रत्येक संसार-ताप-संतप्त मनुष्य को भक्ति-मार्ग आश्रयणीय और सेवनीय होता है। संसार सागर से उत्तीर्ण होने को कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों सुप्रशस्त राज-मार्गों में से किसी एक का अवलंबन करना होगा अधिकार-भेद से जो जिस मार्ग के योग्य होता है, वह उसी पथ का अवलंबन लेकर अग्रसर होने पर अल्पायास में सफलकाम होता है। श्री चैतन्य चरितामृत में कहा है कि—

यार येई मत सेइ हय सर्वोत्तम
तटस्थ हइया विचारि ले आछे तारतम्॥

अर्थात्—जो जिस मार्ग का पथिक है, उसके लिये वही पथ सब से अच्छा है, यह तटस्थ होकर विचार करने पर देखा गया है कि तारतम्य क्या है अर्थात् मार्ग में निकृष्ट या अपकृष्ट विषय नहीं, यह साधक के अधिकार और योग्यता के तारताम्यानुसार है।

परन्तु तमोगुण प्रधान इस कलियुग में तमोगुणी स्वभाव वाले मनुष्यों के लिये भक्ति मार्ग ही अवलम्बनीय है। इस सरल मार्ग में कोई उपद्रव नहीं। भक्ति द्वारा चित्त निर्मल होकर स्वतः ही ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, क्योंकि भक्ति की पराकाष्ठा ही ज्ञान है।

५

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं परिकीर्तितम्"।

त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषत् में कहा है।

तस्मात् सर्व्वेषामधिकारिणामनधिकारिणां भक्तियोग एव प्रशस्यते भक्ति योगो निरुपद्रवः। भक्ति योगान्मुक्तिः। बुद्धिमतामनायासेनाचिरादेव तत्वज्ञानं भवति। तत् कथमिति भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्व्वेभ्यः मोक्षविघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठास्सर्वान् परिपालयति। सर्वाभीष्टान् प्रयच्छति। मोक्षं दापयति। चतुर्मुखादिनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते। कारणेन विना कार्यं नोदेति। भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते। तस्मात् त्वमपि सर्वोपायान् परित्यज्य भक्तिमाश्रय, भक्तिनिष्ठो भव, भक्तिनिष्ठो भव। भक्त्या सर्वसिद्धयः सिद्धयन्ति। भक्त्याऽसाध्यं न किञ्चिदास्ते।"

अर्थ—अतएव अधिकारी अनधिकारी सबको ही भक्तियोग प्रशस्त है। भक्तियोग में किसी प्रकार का विघ्न नहीं। भक्तियोग से मुक्ति मिलती है। भक्ति द्वारा बुद्धिमान मनुष्यको शीघ्र ही तत्त्वज्ञान होता है। वह क्यों ? क्योंकि भक्तवत्सल भगवान अपनी भक्तिमें निष्ठा रखनेवाले साधकोंकी मुक्तिके सब प्रकारके विघ्नों से रक्षा करते हैं। उनके सब अभीष्ट पूरे करते हैं और मोक्ष देते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मादि को भी विष्णु-भक्तिके बिना कोटि-कोटि कल्पमें भी मुक्ति नहीं मिलती, कारण के बिना कार्य नहीं होता। भक्ति के बिना ब्रह्मज्ञान किसी प्रकार नहीं होता। इसलिये तुम भी सब उपायों का त्याग करके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति का ही आश्रय लो। भक्ति-परायण बनो। भक्ति से निष्ठा प्राप्त करो। भक्ति से सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्तहोती हैं। भक्ति से असाध्य कुछ भी नहीं अर्थात् भक्ति द्वारा न मिले, ऐसी कोई वस्तु नहीं।

अध्यात्म रामायण के प्रथम अध्याय में लिखा है—

भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय।
नान्यत् ततः साधनमस्ति किञ्चित्॥

अर्थात्—भक्ति ही संसार सागर से पार लगाने के लिये प्रसिद्ध साधन है। भक्ति के सिवाय और कोई श्रेष्ठ साधन नहीं।

उक्त रामायण के चतुर्थ अध्याय में कहा है—

विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनंधियः
ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम्।
विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत् ततः
सम्यग् विदित्वा परमं पदं व्रजेत्॥

अर्थात् विष्णु भक्ति से आत्मज्ञानधारणोपयोगिनी बुद्धि का उदय होता है। उससे सुनिर्मल ज्ञान अर्थात् विज्ञान और प्रज्ञान उत्पन्न होता है, उससे परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार यथार्थ तत्त्व को जानकर परम पद की प्राप्ति होती है।

वत्स! जैसे 'बृहत्त्वात् इति ब्रह्म' उसी तरह व्यापकत्वात् इति विष्णुः। जो बृहत् है वही व्यापक है, सुतरां ब्रह्म और विष्णु में भेद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं, वे दोनों एक हैं, केवल शब्दों का, नाम का ही भेद है, वस्तुतः कोई भेद नहीं, क्योंकि चैतन्य ही वृहत् और व्यापक है। यह चैतन्य ही ब्रह्म अथवा विष्णु है।

वत्स ! भक्ति-पूर्वक उसका नाम लो, परन्तु अपने को मन में कभी ऊँचा मत समझो। गर्व का त्याग कर दो। तुमको कोई आदमी कुछ भी क्यों न कहे, तुम्हारी निन्दा करे, परन्तु उसपर कान न देकर धैर्य के साथ अपना कर्तव्य करने से कभी मत हटो। तुम्हारे विचार से जो तुम्हारे मन के योग्य पात्र न हो, उसका भी अपमान मत करो, उसको भी भगवान की सृष्ट सन्तान मान कर उसका आदर करके सदा भगवान् का नाम जप और कीर्तन करते रहो।

वत्स ! जहाँ गर्व और अभिमान होता है, जहाँ अधैर्य, चंचलता और वैषम्य भाव होता है, उस जगह अर्थात् उसके हृदय में कभी प्रेम-भक्ति का संचार नहीं होता। वत्स देख ये पृथिवीपर पड़े हुए तृण, इनके ऊपर से उनको पद दलित करके कितने सैकड़ों जीव जन्तु जाते हैं, तो भी उनको किसी पर भी क्रोध नहीं आता। क्रोध किसको होता है ? जिसको अभिमान है, गर्व का बोध है। अभिमान से ही मनुष्य दुःखी है, अभिमान से ही मनुष्य का पतन होता है। सब प्रकार का अभिमान त्यागकर जो तृणवत विनयी हो जाता है, उसको और नीचे गिरने की आशंका नहीं रहती। देख यह वृक्ष, काटने वाला कुठार द्वारा उसपर शतशत आघात करता है, तो भी वह उनको बिना रोये सहन करता जाता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, उसको उनका प्रतिकार करने तक की इच्छा नहीं होती। उस वृक्ष की अपेक्षा तुमको धैर्यवान बनना पड़ेगा। सत्पथ से डिगाने के लिये तुमको कोई कितना भी क्यों न कहे, सत्पथ से हटाने की कितनी भी चेष्टा करे और कितना उपाय भी करे, परन्तु उसके सब अत्याचार हँसते हुए सहन करना पड़ेगा। जैसे यवन हरिदास को काजी ने हरिनाम से हटाने के लिये कठोर वेंतों से कोड़े लगवाये, कितना अत्याचार किया, तौ भी उसको एक क्षण के लिये भी नामसे नहीं हटा सका, और पश्चात् उसी काजी ने श्री भगवान की कृपा से अपने पापों के लिये अनुताप करके हरि-नाम ग्रहण किया और पीछे प्रसिद्ध भक्त में परिणत हो गया। वैसे ही भक्त प्रह्लाद को हरिनाम से च्युत करने के लिये उसके पिता दैत्यकुलाधिपति हिरण्यकशिपु ने कितना क्या नहीं किया? प्रह्लाद के प्राण लेने के लिये भोजन में विष मिलाया, हाथी के पैरों के तले कुचलवाया, पर्वत के शिखर से नीचे गिराया, समुद्र और अग्नि में फिंकवाया, परन्तु जिसके प्राण कृष्ण में लगे थे, वह भक्त प्रह्लाद कितना धैर्यवान था कि एक क्षण के लिए भी हरि-नाम से विचलित नहीं हुआ और उस प्रह्लाद के प्राणों की भक्त-वत्सल श्री भगवान ने किस प्रकार रक्षा की यह हिन्दू मात्र में किसी को अविदित नहीं। वत्स! इस तरह धैर्य-युक्त होकर तुम को भी उसका नाम लेना होगा, तभी तो नाम की सिद्धि मिलेगी।

प्रेमावतार श्री कृष्ण चैतन्य कहते हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥

अर्थात्—तिनके से भी अधिक विनयी और वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होकर सन्मान करने के अयोग्य व्यक्ति को भी मान-दान पूर्वक अपना अभिमान चूर्ण करके सदा श्री हरि-नाम का कीर्तन करते रहना चाहिये।

गुरु करने की आवश्यकता

वत्स गण! तुम कह सकते हो कि ईश्वर का नाम तो सब लेते ही हैं, तब नाम लेने से उनमें आनन्द और भक्ति के लक्षण क्यों नहीं प्रकाश पाते हैं? आनन्द-दायिनी, भक्ति-प्रदायिनी, ज्ञानदा, योगदा और मोक्षप्रदा श्री कुण्डलिनी देवी जब तक मूलाधार में सोई पड़ी है, तब तक उसके न जागने से सभी सो रहे हैं, उसके जागने से सब जागते हैं, सबकी निद्रा भंग होती है।

आधारशक्तिनिद्रायां विश्वं भवति निद्रया।
तस्यां शक्तिप्रबोधेन त्रैलोक्यं प्रतिबुध्यते॥

योगशिखोपनिषद्

क्या सोया हुआ मनुष्य कुछ भी करने में समर्थ होता है? यदि सोये हुए लोगों से काम लेना चाहते हो, तो पहले उन को जगाना पड़ेगा। उसी तरह यदि नाम-जप का आनन्द पाना चाहो नाम द्वारा सिद्धि प्राप्त करना चाहो, तो नाम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की शक्ति अर्थात् मूलाधार में सोती हुई कुण्डलिनी देवी को जगाओ।*

गौतमीय और गंधर्व दोनों तंत्रों में लिखा है—

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किञ्चिन्न सिध्येत मंत्रयंत्रार्चनादिकम्॥
जागर्ति यदा सा देवी बहुभिः पुण्यसंचयैः।
तदा प्रसादमायाति मंत्रयंत्रार्चनादिकम्॥

अर्थः—हे प्रभो! जब तक मूलाधार में कुण्डलिनी-शक्ति सोई हुई है, तब तक मंत्र यंत्र अर्चनादि सफल हो नहीं सकते यदि बहुत जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप कुण्डलिनीशक्ति जाग्रत हो, तब उसके जागने पर उसकी कृपा से मंत्र यंत्र और अर्चनादि सफल होते हैं।

वत्स! उसे जगाना होगा और उसे जगाने के लिये ही तो श्री गुरु का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। 'तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरु-पादं समाश्रयेत्।' नहीं तो मंत्र और नाम तो पुस्तकों में लिखे रहते हैं। जो श्री गुरु-शक्ति के बल से अथवा शक्ति की कृपा से मनुष्यभाव से गुरु-पद अथवा आत्मतत्त्व में स्थिति-प्राप्त हैं, वे ही जब तक शिष्य में शक्ति-संचार नहीं करते, तब तक शिष्य मंत्र अथवा नामजप द्वारा सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता। कुलार्णव मंत्र में दिया है कि—

---

* कुण्डलिनी शक्ति के विषय में मत्प्रणीत 'योगवाणी' देखें।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ति पातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति ।
यत्र शक्तिर्न पतति तत्र सिद्धिर्नजायते ॥

अर्थः—शक्तिपात द्वारा शिष्य गुरु के अनुग्रह को प्राप्त करने के योग्य होता है, जब तक शक्ति संचार नहीं होता, तब तक सिद्धि पाना असंभव है ।

वत्स, जैसे पिता के वीर्य और माता के रज के मिश्रित होने पर यथासमय पुत्र अथवा कन्या उत्पन्न होती है, वैसे ही गुरु की शक्ति शिष्य में संचारित होने पर शिष्य के भीतर सोई हुई शक्ति जाग जाती है और यथासमय ज्ञानरूपी पुत्र और भक्तिरूपी कन्या उत्पन्न करती है । वत्स ! इस विषय में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जैसे वंध्या स्त्री में वीर्यपात होने पर भी वह सन्तान का मुख देखने से वंचित रहती है, वैसे ही गुरु-भक्ति-हीन शिष्य भी शक्तिपात होने पर भी पराशान्ति-प्राप्ति के लिये स्वरूप-ज्ञान और भक्तिरूपी सन्तान से वंचित रहता है । गुरु-भक्ति-हीन शिष्य में कभी भी आत्म तत्त्व अथवा श्री भगवत्तत्त्व प्रकाश नहीं पाता । गुरु-भक्त में ही वे प्रकाश पाते हैं । श्वेताश्वतरोपनिषत् में कहा है:—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

अर्थः—जिसकी देव में अर्थात् सच्चिदानंद परमेश्वर में परा भक्ति है और वैसे ही गुरु में भी पराभक्ति है, उसीं महात्मा में पूर्वकथित आत्मतत्त्व प्रकाशित होता है ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गंधर्व तंत्र में कहा है:—

यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये।
तस्य सर्वार्थ-सिद्धिः स्यान्नान्यथा खलु पार्वति॥

अर्थात्—हे प्रिये पार्वति! गुरु में जिसकी ईश्वर के सदृश भक्ति सदा रहती है, उसके सकल उद्देश्य सफल होते हैं। उद्देश्य-सिद्धि का अन्य उपाय नहीं।

वत्स! जो शक्ति-संचार द्वारा शिष्य पर अनुग्रह करने में समर्थ है, ऐसे महापुरुष को ही गुरु करना चाहिये, अन्य को नहीं। श्री गुरु कृपा-पूर्वक शिष्य में शक्ति-संचार करके, शिष्य की मूलाधार-स्थित शक्ति को जगा कर, शिष्य को उसके संस्कारानुसार कर्म, भक्ति और ज्ञान का अधिकारी बनाते हैं अर्थात् जिनके कर्म के संस्कार हैं, उनको कर्मयोग में (आसन, मुद्रा, प्राणायाम इत्यादि में), जिनके भक्ति के संस्कार हैं, उनको भक्तियोग में और जिनके ज्ञान के संस्कार हैं, उनको ज्ञानयोग में लगा देते हैं। अन्त में उनको, जो सभी का एकमात्र उद्देश्य है, उसी आनंद की प्राप्ति करा देते हैं, अर्थात् आनंद स्वरूप आत्मा में स्थिति करा देते हैं।

कुलार्णव तंत्र में श्री महादेव पार्वती से कहते हैं—

गुरोर्यस्यैव संस्पर्शात् परानंदोऽभिजायते।
गुरुं तमेव वृणुयात् नापरं मतिमान्नरः॥

अर्थ—हे देवि! जिस गुरु के स्पर्श से शिष्य में परानंद का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाश हो, बुद्धिमान मनुष्य उसे ही गुरु बनावे, अन्य को नहीं।

योग वासिष्ठ महारामायण में कहा है—

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात् कृपया शिष्यदेहके।
जनयेद्यः समावेशं शांभवं स हि देशिकः॥

जो कृपा पूर्वक दर्शन, स्पर्श वा शब्द द्वारा मंत्र अथवा नाम देकर शिष्य के देह में मंगलमय ज्ञान-भाव उत्पन्न कर सकें, वे ही गुरु है।

कुलार्णव तंत्र में कहा है :—

ये दत्वा सहजानंदं हरन्तीन्द्रियजं सुखं।
सेव्यास्ते गुरवः शिष्यरन्ये त्याज्याः प्रतारकाः॥

अर्थ :—जो शिष्य को सहजानंद देकर इन्द्रियों के सुखों को हर लेते हैं, वे ही गुरु सेवा करने के योग्य हैं, इनके सिवाय अन्य गुरु प्रतारक हैं, वे त्यागने चाहिये।

अद्वयतारकोपनिषद् में कहा है :—

आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च योगात्मकस्तथा शुचिः॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते॥

अर्थ :—जो वेदोक्त ज्ञानसंपन्न, परमेश्वर की भक्ति युक्त, मत्सरादि दोष-हीन, योगवित् (योग का विषय जानने वाला), योगपरायण (प्रतिनियत योगानुष्ठान करनेवाला), योगात्मक, (योग द्वारा आत्मस्थित) अन्तर्बहिः शौचाचार-संपन्न, गुरु भक्ति-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समायुक्त और इस नौ द्वार वाले देह रूपी पुरी में निवास करने वाले पुरुष अर्थात् आत्मा के ज्ञानसे संपन्न हो, ऐसे आचार्य को गुरु कहते हैं। वत्स! जो स्ववर्णाश्रमोचित आचरणों का पालन करता है और शिष्य को सदाचार की शिक्षा देता है, वही आचार्य है। शास्त्र में आचार्य के लक्षणों के संबंध में कहा है :—

आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कीर्तितः॥

अर्थ :—जो शास्त्र के वास्तविक तात्पर्य का संग्रह करता है, लोकसमाज को शास्त्रानुसार आचार में संस्थापित करता है और स्वयं भी शास्त्रोक्त आचारों का प्रतिपालन करता है, उसे आचार्य कहते हैं।

गुरु भक्ति, श्री गुरु और ईश्वर में अभेद।

वत्स! श्री गुरु और ईश्वर में भेद-बुद्धि नहीं करना। तभी ईश्वरानुग्रह का अनुभव शीघ्र ही करके कृतार्थ हो सकोगे। जगद्‌गुरु भगवान् श्रीमच्छङ्कराचार्य ने अपने सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त-सार संग्रह' में कहा है—

शिव एव गुरुस्साक्षात् गुरुरेव शिवः स्वयं।
उभयोरन्तरं किञ्चिन्न द्रष्टव्यं मुमुक्षिभिः॥

अर्थात्—शिव ही साक्षात् गुरु है और गुरु ही स्वयं शिव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, दोनों में भेद है, यह विचार मुमुक्षुओं के हृदय में कभी नहीं आना चाहिये। कुलार्णवतंत्र में कहा है—

भोगमोक्षार्थिनां ब्रह्माविष्ण्वीशपदकांक्षिणाम्।
भक्तिरेव गुरौ देवि नान्यः पन्था इति श्रुतिः॥
स शिवो गुरुरूपेण भुक्तिमुक्तिप्रदो मम।
इति भक्त्या स्मरेद्यस्तु तस्यसिद्धिरदूरतः॥

अर्थ—हे देवि! भोग और मोक्ष की इच्छा रखने वालों को और ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर के पद-प्राप्ति की कामना वालों को उनकी प्राप्ति के निमित्त श्री गुरु में भक्ति ही एकमात्र उपाय है, दूसरा मार्ग नहीं, ऐसा ही वेदों का कहना है। वह शिव गुरु के रूप में मुझको भोग और मोक्ष प्रदान करेंगे, ऐसा जानकर भक्ति सहित गुरु का स्मरण करे, तो उसके लिये सिद्धि दूर नहीं। कुलार्णवतंत्र में अन्यत्र कहा है—

श्रीगुरुं प्राकृतैः सार्द्धं ये स्मरन्ति वदन्ति वा।
तेषां हि सुकृतं सर्वं पातकं भवति प्रिये॥

अर्थ—श्री गुरु को साधारण मनुष्य के सदृश मानकर जो उनका स्मरण अथवा कथन करते हैं, उनके सब सुकृत पाप हो जाते हैं।

नरवद् दृश्यते लोके श्रीगुरुः पापकर्मणा।
शिववद् दृश्यते लोके भवानि पुण्यकर्मणा॥
श्री गुरु परं तत्त्वं तिष्ठते चक्षुरग्रतः।
मंदभाग्या न पश्यन्ति ह्यन्धाः सूर्यमिवोदितम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पापों के कारण जिनका चित्त कलुषित है, उनको गुरु मनुष्य के समान दिख पड़ते हैं, और पुण्य-कर्मों के द्वारा जिनका चित्त निर्मल हो गया है, वे गुरु को साक्षात् शिव का रूप ही देखते हैं। जैसे अंधा आदमी आकाश में उदय हुए सूर्य के दर्शन करने में असमर्थ है, वैसे ही मंद-भाग्य व्यक्ति की आंखें अपने सन्मुख उपस्थित परंतत्त्वरूप श्री गुरु को नहीं देख पातीं। योग-शिखोपनिषद् में कहा है—

यथा गुरुस्तथैवेशो यथैवेशस्तथा गुरुः।
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेऽनयोः॥

अर्थ—जैसा गुरु वैसा ही ईश्वर, जैसा ईश्वर वैसा ही गुरु, इसलिये गुरु को ईश्वर समझकर महती भक्ति सहित उसका पूजन करना चाहिये। दोनों में कोई भेद नहीं।

ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा है—

"गुरुरेव हरिः साक्षात् नान्य इत्यब्रवीत् श्रुतिः"। कि गुरु ही साक्षात् हरि है अन्य नहीं, ऐसा श्रुति अर्थात् वेद कहते हैं। श्री मद्भागवत में श्री भगवान् कृष्णचन्द्र उद्धव से कहते हैं—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

गुरु को मत्स्वरूप (भगवत्स्वरूप) समझना चाहिये, उनकी कभी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये और मनुष्य-बुद्धि से कभी उनसे द्वेष नहीं करना चाहिये अर्थात् दोष ढूँढने को प्रवृत्त नहीं होना चाहिए, क्योंकि गुरु सर्व देवताओं का रूप है। मनु-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संहिता में दिया है 'आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः' अर्थात् आचार्य वा गुरु ही वेदान्त-प्रतिपाद्य ब्रह्म की मूर्ति है। बोधसार में लिखा है—

गुरोरनुग्रहादीश ईश्वरानुग्रहाद् गुरुः।
श्री गुरोर्दर्शनं हेतुः परत्वीश्वरदर्शने॥

गुरु का अनुग्रह होने पर ईश्वर की प्राप्ति होती है और ईश्वर के अनुग्रह से गुरु मिलते हैं, परन्तु श्री गुरु का दर्शन ही ईश्वर के दर्शन का हेतु होने से ईश्वर की अपेक्षा भी श्रेष्ठ है।

ईश्वरः सर्वहेतुत्वाद्धेतुः संसार-मोक्षयोः।
मोक्षस्यैव गुरुस्तस्मान्नास्ति तत्त्व गुरोः परम्॥

ईश्वर सब का कारण होने से संसार और मोक्ष दोनों का कारण है और गुरु केवल मोक्ष के ही हेतु हैं, इसलिये गुरु की अपेक्षा परम तत्त्व दूसरा नहीं।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय॥

वत्स! वास्तविक ईश्वर का अनुग्रह होने से गुरु की प्राप्ति होती है। श्री भगवान श्री मच्छङ्कराचार्य अपने सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह में लिखते हैं।

जन्मानेकशतैः सदाचारयुजा भक्त्या समाराधितो।
भक्तैर्वैदिकलक्षणेन विधिना सन्तुष्ट ईशः स्वयम्॥
साक्षात् श्रीगुरुरूपमेत्य कृपया दृग्गोचरः सन् प्रभुः।
तत्त्वं साधु विबोध्य तारयति तान् संसारदुःखार्णवात्॥

अर्थ—सैकड़ों जन्मों में सदाचार-युक्त भक्ति द्वारा और वेद-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विहित कर्मानुष्ठान द्वारा परमेश्वर की आराधना करने पर भक्तवत्सल भगवान अपने भक्त की उपासना से सन्तुष्ट होकर स्वयं साक्षात् गुरु-रूप धारण करके कृपया दृष्टि-गोचर होते हैं। और उसको सम्यक् तत्त्व का उपदेश करके संसार रूपी दुःखसागर से उद्धार करते हैं, अर्थात् परम शान्ति प्रदान करते हैं। कुलार्णव तंत्र में कहा है :—

सर्वानुग्रह कर्तृत्वादीश्वरः करुणानिधिः
आचार्यरूपमास्थाय दीक्षया मोक्षयेत्पशून्।

ईश्वर सब प्रकार अनुग्रह करने में समर्थ है, इसलिये करुणानिधि ईश्वर करुणापूर्वक गुरु का रूप धारण करके जीवों का उद्धार करता है।

वत्स ! यदि मंत्र अथवा नाम-साधन द्वारा सिद्धि-लाभ करके कृतार्थ होना चाहो, तो गुरु में कभी भी मनुष्य-बुद्धि मत करो और मंत्र अथवा नाम को कभी भी 'अक्षर-समूह' अर्थात् शब्दमात्र मत समझो। मंत्र अथवा नाम भी अक्षरों के रूप में भगवान ही हैं।

कुलार्णव तंत्र में कहा है—

गुरौ मानुष बुद्धिं च मंत्रे चाक्षर बुद्धिकम्।
प्रतिमासु शिला बुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्॥

जो मनुष्य गुरु में मनुष्य-बुद्धि, मंत्र में अक्षर-बुद्धि और प्रतिमा में पत्थर की बुद्धि रखता है वह मनुष्य नरकगामी होता है। श्री शारदातिलक की टीका में कहा है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्यतु।
कदापि न भवेत् सिद्धिर्न मन्त्रैर्देवपूजनैः॥

गुरु में कभी मनुष्य-बुद्धि न करे। जो गुरु को मनुष्य समझता है, उसको मंत्र के जप और देवताओं के पूजन से कभी सिद्धि नहीं होती।

वत्स! गुरु दो प्रकार के होते हैं (१) जो स्वयं मोह पाश में बद्ध है, जिसका इस मनुष्य-देह में से 'मैं' और 'मेरे पन' का भाव नहीं गया है और जो इस अविद्या रूप अन्धकार में पड़ा हुआ स्त्री, पुत्र और पशु आदि विषयों की अनन्त वासनाओं में फँसा हुआ है, वह शिष्य के मोह पाशों को काटने में समर्थ नहीं हो सकता। उसने शास्त्रादि के अध्ययन द्वारा कितना भी पाण्डित्य क्यों न प्राप्त किया हो, उसका सारा ज्ञान परोक्ष ज्ञान मात्र है, इसलिये ऐसे परोक्षज्ञानी के उपदेश से शिष्य के हृदय में परोक्ष ज्ञान ही उत्पन्न होगा, परन्तु जिसके द्वारा निरवच्छिन्न शान्ति और अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है, उस अपरोक्ष ज्ञान का प्रकाश उसमें नहीं हो सकता। इस प्रकार जिस गुरु की अपने मानुष देह से आत्मबुद्धि नष्ट नहीं हुई है, वह मनुष्य मनुष्यपद वाच्य है, वह ईश्वरपद वाच्य नहीं। (२) जो इस अनित्य देहादि में 'मैं और मेरे' पन का बोध नहीं रखते, जो गुरु-शक्ति प्राप्तकर गुरुत्व अर्थात् ब्रह्मतत्त्व में (आत्मतत्त्व में) आरूढ़ हो रहे हैं, ऐसे गुरु और ईश्वर में वस्तुतः कोई भेद नहीं। शास्त्रादि ऐसे गुरु की ईश्वर-बुद्धि से पूजा और ध्यान करने का उपदेश

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते हैं। ऐसे गुरु ही तत्त्वोपदेश देकर शिष्य की भ्रान्ति नष्ट करने में समर्थ हैं और शिष्य भी ऐसे शक्ति-संपन्न सामर्थ्यवान सद्गुरु की कृपा पाकर ही कर्म, ज्ञान और भक्ति प्राप्त करने में समर्थ और कृतार्थ होते हैं। कहा है:—

शब्दार्थज्ञः स्वात्मतत्त्वानुभवी च गुरुर्द्विधा,
आद्यो नरो न तु ब्रह्म नरत्वभ्रान्त्यनाशनात्।
तेनोक्ते संशया एव स्युर्वाक्या बहुयोजनात्,
ब्रह्मैवानुभवी तेन ब्रह्म प्रोक्तं विबुध्यते।।

अनुभूति प्रकाश अ० ११.

अर्थ—गुरु दो प्रकार के हैं, एक प्रकार का वह जो शास्त्रों का अर्थ समझता है, परन्तु आत्मानुभूति नहीं रखता, और दूसरा गुरु वह है, जो अपने आत्मतत्त्व का अनुभव करता है। पहिला गुरु मनुष्य मात्र है, ब्रह्म नहीं। क्यों नहीं? क्योंकि उसको इस मनुष्य देह पर से "मैं" और "मेरेपन" की बुद्धिरूपी भ्रान्ति नष्ट नहीं हुई है। ऐसे गुरु के आत्मतत्त्वोपदेश करने से उसके द्वारा केवल अधिक संशय उत्पन्न होंगे, किसी प्रकार निश्चयज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि परोक्षज्ञानी केवल शास्त्रों के वाक्यों का नाना प्रकार से अन्वय कर सकते हैं, परन्तु जिसने आत्म-तत्त्वानुभव किया है, वह तो स्वयं ब्रह्मस्वरूप ही है। श्रुति का वचन है—'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' ब्रह्म को जानने वाला मनुष्य स्वयं ब्रह्म हो जाता है, ऐसे गुरु के ब्रह्मविषयक उपदेश करने से उसके द्वारा ज्ञान लाभ होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वत्स ! ऐसा गुरु ही सद्गुरु-पद-वाच्य है। 'स एव सद्गुरुः साक्षात् यः सदसद् ब्रह्मवित्तम' अर्थात् जो सगुण निर्गुण ब्रह्म को संपूर्ण रूप से जानता है, वही सद्गुरु है।

निर्गुण ब्रह्म ही सत् और सगुण ब्रह्म ही असत् कहलाता है। 'यज्जन्यं तदनित्यम्'। जिसका जन्म होता है उसका नाश भी होता है; इस न्याय के अनुसार माया-ब्रह्म अथवा सगुण ब्रह्म का अस्तित्व तब तक है, जब तक माया या लीला रहती है, मायातीत अवस्था को ही निर्गुण कहते हैं। देवीभागवत में कहा है—

निर्गुणं सगुणं चेति द्विधामद्रूपमुच्यते।
निर्गुणं मायया हीनं सगुणं माययायुतम्॥

अर्थः—निर्गुण और सगुण भेद से मेरे दो रूप हैं, जो मायारहित है, वह निर्गुण है और जो माया के अन्तर्गत है, वही सगुण कहलाता है।

वत्स ! सद्गुरु की कृपा होने पर शिष्यों में क्रमशः कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का प्रकाश होता है। सद्गुरु की कृपा के बिना भक्ति और ज्ञान की प्राप्ति असंभव है।

त्रिपाद-विभूति महानारायणोपनिषत् में कहा है—

यथा जातान्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते, तथा गुरूपदेशेन विना कल्पकोटिभिः तत्त्वज्ञानं न विद्यते। तस्मात् सद्गुरुकटाक्षलेशविशेषेणाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति। यदा सद्गुरुकटाक्षो भवति तदा भगवत्कथा श्रवणध्यानादौ श्र-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जायते। तस्मात् हृदयस्थितानादि दुर्वासनाग्रंथिविनाशो भवति। ततो हृदयस्थिताः कामाः सर्वे विनश्यन्ति। तस्मात् हृदयपुण्डरीक-कर्णिकायां परमात्माविर्भावो भवति। ततो दृढतया वैष्णवी भक्तिर्जायते। ततो वैराग्यमुदेति। वैराग्यात् बुद्धिविज्ञानाविर्भावो भवति। अभ्यासात् तज्ज्ञानं क्रमेण परिपक्वं भवति। पक्वविज्ञानाज्जीवन्मुक्तो भवति। ततः शुभाशुभ कर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति। ततो दृढतरशुद्ध-सात्विक वासनया भक्त्यतिशयो भवति। भक्त्यतिशयेन नारायणः सर्वमयः सर्वास्ववस्थासु विभाति। सर्वाणि जगन्ति नारायणमयानि प्रविभान्ति।

अर्थः—जो मनुष्य जन्मांध है, उसे जैसे कभी रूप का ज्ञान नहीं होता, वैसे ही गुरूपदेश के बिना कोटि कल्पों में भी तत्त्व-ज्ञान नहीं होता। अतएव सद्गुरु की कृपा-दृष्टि होने से शीघ्र ही तत्त्व ज्ञान होता है। जब सद्गुरु का कृपा कटाक्ष प्राप्त होता है, तब भगवत्कथा श्रवण और ध्यानादि में श्रद्धा उत्पन्न होती है, उससे हृदय-स्थित अनादि दुर्वासनाओं की ग्रंथि टूटती है। उसके पश्चात् हृदय-स्थित सब प्रकार की कामनायें नष्ट होती हैं, तदन्तर अर्थात् सब कामनाओं के नष्ट होने पर हृदय-कमल की कर्णिका में परमात्मा का आविर्भाव अर्थात् प्रकाश अनुभव में आता है। जब दृढ़ भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है, उससे वैराग्य उत्पन्न होता है। फिर वैराग्य से बुद्धि में विज्ञान का आविर्भाव होता है, अभ्यास द्वारा वह ज्ञान क्रम से पक्व होता है। विज्ञान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के एक होने पर, अर्थात् जब एक ब्रह्म के सिवाय दूसरी किसी वस्तु की सत्ता न दिखे, "मैं" और जो कुछ दिख रहा है, वह सब ब्रह्म ही है, ऐसा ज्ञान दृढ़ होने पर वह जीवनमुक्त हो जाता है, उसके पिछले शुभाशुभ कर्म वासनाओं सहित नहीं रहते। तदन्तर दृढ़ सात्विक वासना से अतिशय भक्ति उत्पन्न होती है। अतिशय भक्ति उत्पन्न होने पर सर्वमय नारायण सब अवस्थाओं में प्रकाशित रहने लगते हैं, सारा जगत ही नारायण-मय दिखने लगता है।

वत्स! जिस सद्गुरु के कृपाकटाक्ष से वह दुर्लभ विष्णु-भक्ति उत्पन्न होती है, उसके बराबर बंधु तीनों लोकों में और कोई नहीं है। एकमात्र गुरु ही मनुष्य का सच्चा बंधु है। पिता, माता, बांधव सब एक वह गुरु ही है। नारद पंचरात्र में लिखा है—

स गुरुः सपिता वन्द्यः सा माता स पतिः सुतः।
यो ददाति हरौभक्तिं कर्ममूलनिकृन्तनीम्॥

अर्थ—जो कर्म की जड़ अविद्या का नाश करने वाली हरि-भक्ति प्रदान करता है, वह गुरु, वही पिता वंदनीय है, वही माता, रक्षा करने वाला पति और सेवा करके पालने योग्य सन्तान (पुत्र) भी वही है। क्रियासार में कहा है—

गुरुर्माता पिता स्वामी बांधवाः सुहृदः शिवः।
इत्याध्याय मनो नित्यं भजेत्सर्वात्मना गुरुम्॥

अर्थ—गुरु ही माता, पिता, स्वामी, बांधव, सुहृद और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिव स्वरूप है, ऐसा मन में धारण करके सब प्रयत्न से उसकी सेवा करे।

वत्स! जैसे पिता इस मल-मूत्र-पूर्ण शरीर का जन्मदाता है, वैसे ही गुरु निर्मल ब्रह्मज्ञान का जन्मदाता है, अर्थात् श्री गुरु पहले अपनी पवित्र शक्ति शिष्य में संचारित करके उसको पवित्र ज्ञान और भक्ति पाने की योग्यता प्रदान करता है और जीव-ब्रह्मैक्य ज्ञानोपदेश द्वारा शिष्य को इस अनित्य शरीरादि में "अहंबुद्धि' का जिससे शिष्य 'मैं मनुष्य हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ" इत्यादि मानकर दुःख के हेतु नानाविध वासनाओं में फँसा हुआ नानाविध कर्म करता है और उन कर्मों के हेतु अविद्या अथवा अज्ञान का भी नाश करके, शिष्य को आत्मस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप अथवा चैतन्य-स्वरूप का बोध कराकर उस पर आरूढ कराता है, इसी से तो गुरु पिता है। मनुष्य माता पिता से तो अस्थि-मांस का शरीर पाता है, उसका नाश है, परन्तु श्रीगुरुरूप पिता से तो चिन्मय ब्रह्मज्ञान स्वरूप देह की प्राप्ति होती है, उसका नाश नहीं, इसलिये माता पिता की अपेक्षा गुरु श्रेष्ठ है।

पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः।
पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन॥

(देवी भागवत १-३५-४)

अर्थ—जो मनुष्य को ब्रह्मरूप जन्म देता है, वह पिता की अपेक्षा भी श्रेष्ठ है और माननीय है, इसमें संदेह नहीं, क्योंकि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पिता जिस देह को जन्म देता है, वह नश्वर है, परन्तु गुरु जो ब्रह्मरूप जन्म देता है, उसका कभी नाश नहीं होता।

मनुस्मृति में कहा है—

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते॥

मातृ-भक्ति से यह लोक और पितृ-भक्ति से अन्तरिक्ष लोक और गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

कुलार्णव तंत्र में कहा है—

गुरुभक्त्या यथादेवि प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः।
यज्ञदानतपस्तीर्थव्रताद्यैर्न तथा प्रिये॥
श्री गुरौ निश्चला भक्तिर्वर्द्धते हि यथा-यथा।
तथातथास्य विज्ञानं वर्द्धते कुलनायिके॥

अर्थ—हे देवि! गुरु-भक्ति द्वारा सर्वाभीष्ट की सिद्धि जितनी होती है उतनी यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत आदि से नहीं होती। श्री गुरु में ज्यों २ निश्चला भक्ति बढ़ती है, वैसे ही शिष्य के तत्त्व-ज्ञान की भी वृद्धि होती है।

वत्स! जैसे माता अपनी सन्तान को स्तनों का दूध पिलाकर पालन पोषण करती है, वैसे ही गुरु अपने शिष्यों को इस संसार के मिथ्यात्व, इन शरीरादि के नश्वरत्व इत्यादि विषयों के ज्ञानोपदेश द्वारा शिष्य के ज्ञान का पालन पोषण करते रहते हैं, जिससे उनकी ब्रह्म में स्थिति हो और वे दृश्य प्रपंच में आसक्त होकर अपनी स्थिति से च्युत न हों,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसी से वे माता तुल्य हैं। जैसे पति अथवा स्वामी उत्तम पुत्र की प्राप्ति के लिये अपनी स्त्री की व्यभिचारादि पापों से रक्षा करता है, और उससे पुत्र उत्पन्न करता है, वैसे ही कृपानिधि गुरु उपदेशादि द्वारा शिष्यों की रक्षा करते हैं, जिससे शिष्यों के मन सदा एकतत्त्वाभ्यास में रत रहें, उनमें अव्यभिचारिणी भक्ति उदय हो, अर्थात् परमात्म-तत्त्व में एक निष्ठा उत्पन्न हो, और उनके ज्ञानरूपी पुत्र उत्पन्न हो। इसी से वे रक्षा करने वाले पति के समान हैं।

वत्स ! इस प्रकार जो गुरु है, वह शिष्योंके द्वारा पालन, योग्य है, इसीलिये वह सन्तानस्वरूप कहा गया है। गुरुका पालन करना शिष्योंका कर्तव्य है, पुत्रका जैसे प्रेमपूर्वक पालन किया जाता है, वैसे ही शिष्य को गुरु का पालन करना चाहिये। पिता जैसे पुत्रको बिना कहे उसकी इच्छानुसार अपने प्राणोंसे अधिक समझकर पालन करता है, वैसे ही गुरु भी सन्तानवत् पालने योग्य है। वत्स ! गुरु-सेवा-विहीन शिष्यको गुरुका उपदेश वीर्यवान नहीं होता। श्रीभगवान श्रीमच्छङ्कराचार्य ने अपने सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त संग्रह में लिखा है.—

शुश्रूषया सदा भक्त्या प्रणामैर्विनयोक्तिभिः।
प्रसन्नं गुरुमासाद्य प्रष्टव्यं ज्ञेयमात्मनः॥

अर्थ :—सेवा, परिचर्या, सद्भक्तियुक्त प्रणाम और विनय-पूर्ण वचनोंसे गुरुको प्रसन्न करके उनसे अपनी जिज्ञासा का विषय पूछना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

अर्थ :—वह आत्मज्ञान प्राप्त करना है, तो शास्त्रज्ञ, श्रोत्रीय ज्ञानी और तत्त्वदर्शी गुरुके पास जाकर विनयपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके पूछना चाहिए "हमें संसार बंधन क्यों है ? मैं कौन हूँ ? संसार क्या है ? मुक्ति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है ? बंधन क्या है ? मोक्ष क्या है ? विद्या क्या है ? अविद्या क्या है ?" इत्यादि प्रश्न करके भृत्यवत् परिचर्या द्वारा उनको प्रसन्न भी करना चाहिए। तुम्हारी ऐसी भक्ति, विचार और श्रद्धा से प्रसन्न होकर वे तुमको आत्मतत्त्व का उपदेश प्रदान करेंगे। वत्स ! सब साधनों की जड़ गुरुभक्ति है। व्यास स्मृति में कहा है—

गुरुमूलाः क्रियाः सर्वा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः।
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यं मुक्तार्थस्तु समाहितैः ॥

अर्थ :—भोग और मोक्ष दोनों फलों के देने वाले सब क्रिया समुदाय गुरुकी कृपाके ऊपर निर्भर हैं। इसलिये सदा समाहित चित्त से तत्त्वज्ञ गुरु की सेवा करनी चाहिये।

वत्स ! एकमात्र गुरुभक्ति द्वारा ही शिष्य अपने अभीष्ट की सिद्धि कर सकता है। इस विषय पर हमारे शास्त्रों में बहुत दृष्टान्त देखनेमें आते हैं, जैसे गुरु-भक्त एकलव्य, जाबाल सत्य-काम, आयोद, धौम्य ऋषि का शिष्य आरुणि, उपमन्यु, दुर्वे ऋषि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का शिष्य उत्तङ्क और हमारे जगद्गुरु भगवान् श्री शंकराचार्य के शिष्य तोटकाचार्य इत्यादि। वत्स! शास्त्र ही तो हम लोगों के लिये प्रमाण हैं। जिनको शास्त्रों के वचनों में विश्वास नहीं, वे ही तो नास्तिक हैं। यदि शान्ति प्राप्त करना चाहते हो, तो शास्त्रविधि-पूर्वक कार्य करने होंगे। जो स्वेच्छाचारी और उच्छृङ्खल हैं, वे कभी शान्ति नहीं पा सकते। शान्ति कैसे मिले और अशान्ति का क्या कारण है और कर्तव्याकर्तव्य क्या है. इन सबका प्रमाण तो शास्त्र ही है। गीता में श्री भगवान कहते हैं

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

अर्थ :—जो मनुष्य शास्त्रविहित धर्माचरण का परित्याग करके यथेच्छाचारी होकर कार्य करता है, उसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इहलोक और परलोकमें सुख अथवा मोक्षकी उत्तम गति भी उसे नहीं मिलती। इसलिये क्या कार्य है और क्या अकार्य है, यह जानने के लिए तुम्हारे लिए श्रुतिस्मृतिपुराणादि शास्त्र ही प्रमाण हैं। सुतरां शास्त्रीय विधानानुसार विहित अथवा निषिद्ध कर्म जानकर निषिद्ध कर्मों का त्याग करके, अपने अधिकारानुसार विहित कर्मों का अनुष्ठान करना तुम्हारा कर्तव्य है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति के लक्षण

वत्स ! जो अपनी साधन शक्ति का शिष्यों में संचार कर सकते हैं, ऐसे योग्य सद्गुरु से मंत्र और नाम ग्रहण कर के साधन करने पर जो शुभ लक्षण प्रकाश पाते हैं, वे तुमसे कहते हैं, एकाग्र चित्त होकर सुनो। मन्त्र अथवा नाम-साधन करने में यदि सामान्य कुछ आनन्द अथवा अनुभव न हों, तो साधक साधनपथ पर अग्रसर हो रहा है, इसका प्रमाण क्या? कुछ भी यदि अनुभव होने लगे, तभी श्रीगुरुदत्त साधन मार्ग में श्रद्धा बढ़ती है।

सद्गुरु की कृपा से योग, भक्ति और ज्ञान की आधारभूता मूलाधारस्थिता चितिशक्तिस्वरूपिणी श्री कुण्डलिनी के जागने पर जब नाम अथवा मन्त्र के जप से सत्वगुण की वृद्धि होती है, तब आनन्द, कंप, अश्रुपात, पुलकावलि, गद्गद् होना, एवं हँसना, चिल्लाना नाचना, श्वास का रुकना इत्यादि नाना प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं। तुमसे अब क्रमशः ये सब लक्षण कहते हैं। श्री भगवान कहते हैं :—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभिक्षणं हसति क्वचिच्च।
विलज्य उद्गायति नृत्यतिच मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

अर्थ—भक्ति के प्रभाव से जिसकी वाणी गद्गद् होकर हृदय द्रवीभूत हो जाय, जो बार बार उच्च शब्द से मुझे बुलावे, कभी चिल्लावे, कभी हँसे, कभी निर्लज्ज होकर नाचे,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कभी ऊँचे स्वर से मेरे गुणगान करे, ऐसा जो भक्तिमान पुरुष है, वह स्वयं पवित्र होकर जगत को पवित्र करता है। श्रीमद्भागवत में अन्यत्र यह भी कहा है :—

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या, जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवत् नृत्यति लोकबाह्यः॥

अर्थः—अनन्त लीलामय श्री भगवान के नामों में जो नाम जिसको प्रिय हो, उसी नाम के कीर्तन को ही जीवन का प्रधान व्रत अथवा सर्वोत्तम उद्देश्य बनाकर नाम-कीर्तन करते करते जिसके हृदय में अनुराग उत्पन्न होता है, भावपूर्ण होकर जिसका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, वह कभी हँसता है, रोने लगता है, कभी उच्चस्वर से चीत्कार करता है, कभी गाता है, कभी प्रभु के प्रेम में मस्त होकर पागल के सदृश नाचने लगता है और कभी वह बाह्यज्ञान-रहित होकर संज्ञाहीन हो जाता है। श्रीमत् रूप गोस्वामी ने भक्ति रसामृत सिंधु में भी कहा है—

अनुभवास्तु चित्तस्य भावानामवबोधकाः।
ते बहिर्विक्रिया प्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्यया॥
नृत्यं विलुठित गीतं क्रोशनं तनुमोठनं।
हुँकारो जृम्भणं श्वासं भूमालोकानपेक्षिता॥
लाला स्रावोऽट्टहासश्च घूर्णा हिक्का दयोऽपि च॥
ते शीताः क्षेपनाश्चेति यथार्थाख्याद्विधोदिताः॥

अर्थ—इस साधन में चित्तस्थ भावों की प्रकाशक निम्नलिखित बाह्यक्रियायें अनुभव में आती हैं, नृत्य, गीत, भूमि पर लोटना,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उच्च चिल्लाना, शरीर का ऐंठना, हुंकार, जंभाई आना, दीर्घ श्वास प्रश्वास, संसार की निन्दा या प्रशंसा की उपेक्षा, लार गिरना, अट्टहास, घूर्णा, हिचकी, ठंढ लगना और हाथ पाँवों को फेंकना इत्यादि।

उक्त ग्रन्थ में अन्यत्र लिखा है—

चित्तं सत्त्वीभवत् प्राणेनसत्यात्मानमुद्धटम्।
प्राणस्तु विक्रियां गच्छन् देहं विक्षोभयत्यलम्॥
तदास्तम्भादयो भावा भक्तदेहे भवन्त्यमी।
ते स्तम्भ स्वेदरोमाञ्चाः स्वरभेदोऽथ वेपथुः॥
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः॥

श्री गुरु-प्रदत्त शक्तिसंपुटित मंत्र या नाम के जप करते २ चित्त सत्त्वभावापन्न होकर प्राण में लीन हो जाता है। प्राण जब विक्रिय होकर देह को विशेष रूप से क्षुब्ध करते हैं, तब भक्त के देह में स्तंभादि भाव प्रकट होते हैं। जैसे स्तंभ (शरीर का जड़वत् होना), पसीना आना, रोमाञ्च होना, स्वर-भेद (कंठ-स्वर की नानाविध विकृति), कंप, शरीर के वर्ण का बदल जाना, अश्रुपात होना, निद्रा, मूर्छा, ये आठ प्रकार के सात्विक भावजन्य विकार उत्पन्न होते हैं।

वत्स! श्री गुरु-प्रदत्त शक्तिसंपुटित मंत्र या नाम का जप करते २ जब प्राण मूलाधार में पृथ्वी तत्त्व का अवलम्बन लेते हैं, तब स्तंभभाव उत्पन्न होता है, स्वाधिष्ठान में जब जल-तत्त्व का आश्रय लेते हैं, तब अश्रुपात होता है, नाभिचक्र अथवा मणिपूर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में अग्नि तत्त्व में स्थित होते हैं, तब पसीना और वर्ण-विकार होता है और विशुद्ध-चक्र में आकाशाश्रित होते हैं तब मूर्छा, तंद्रा अथवा निद्रा होती है, और जब प्राण अनाहतचक्र में वायु में स्थित होते हैं, तब रोमांच, कंप और स्वर-विक्रिया होती है, इस प्रकार सब भाव प्रकट होते हैं। भक्तिरसामृत सिंधु में कहा है—

स्तंभं भूमिस्थितः प्राणस्तनोत्यश्रु जलाश्रयः।
तेजःस्थः स्वेदवैवर्ण्यं प्रलयं वियदाश्रितः॥
स्वस्थ एव क्रमान्मंदमध्यतीव्रत्वभेदभाग्भवन्।
रोमाञ्चकंपवैस्वर्याण्यत्र त्रीणि तनोत्यसौ॥

प्राण भूमितत्व में स्थित होने से स्तंभ, जलाश्रित होने से अश्रुपात, अग्नितत्व में स्थित होने पर स्वेद और वर्ण-विकार और आकाश में ठहरने पर लय का भाव उत्पन्न होता है और जब प्राण अपने स्थान वायु में स्थित होते हैं, तब मंद, मध्य और तीव्र भेद से रोमांच, कंप और स्वर-विक्रिया ये तीनों भाव प्रकाश पाते हैं। अन्यत्र यह भी कहा है—

क्षान्तिरव्यर्थं कालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबद्धसमुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः॥
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने॥

अर्थ—क्षमा, सहनशीलता, समय का सदुव्यवहार अर्थात् समय को वृथा नष्ट न करना, भगवन्नाम-कीर्तन और श्रवण, भगवान्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के गुणों का व्याख्यान और भक्ति एवं ज्ञान, शास्त्रों का अध्ययन इत्यादि में समय लगाना, विषयों से विरक्ति, अभिमान शून्यता, भगवान के मिलने की आशा और मन की अत्यन्त उत्कण्ठा अर्थात् व्याकुलता, उसके नाम लेने में सदा रुचि, उसके गुणगान करने में आसक्ति और जहाँ भगवान का मंदिर हो वहाँ रहने में प्रीति, ये सब भाव साधकों में प्रकट होने पर समझना चाहिये कि उसमें भक्ति का अंकुर उत्पन्न हो रहा है।

वत्स! प्रेमावतार श्रीकृष्ण चैतन्य भारती जब काशीधाम में आये, तब उनकी भक्ति और प्रेम के लक्षण जैसे हंसना, रोना, नाचना, गाना इत्यादि देख सुनकर प्रकाशानंद सरस्वती ने उनसे कहा कि संन्यासी होकर आप नाचते गाते हैं और भावापन्न होकर सब के साथ कीर्तन करते हैं। संन्यासियों का धर्म तो वेदान्त पढ़ना और ध्यान करना है, आप इन्हें छोड़ कर क्यों भावुकों के कर्म करते हैं? साक्षात् नारायणस्वरूप होकर आप क्यों ऐसे हीन आचार करते हैं? इसका क्या कारण है? उसके उत्तर में प्रेमावतार आनंदमूर्ति श्री कृष्णचैतन्य बोले कि हे श्रीपाद, सुनिये, इसका कारण यह है कि मेरे गुरु ने मुझे मूर्ख देख कर यह आज्ञा दी कि तुम मूर्ख हो, इसलिये वेदान्त का तुम को अधिकार नहीं है। कृष्ण का नाम जपो, यही मंत्रों का सार है, कृष्ण-मंत्र से ही संसार-मोचन हो जायगा और कृष्ण के नाम से कृष्ण-चरणों में प्रीति होगी। कलियुग में नाम के बिना अन्य धर्म नहीं है। सब मंत्रों का सार नाम ही है, यही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सब शास्त्रों का मर्म है, ऐसा कह कर मुझ को यह श्लोक सिखाया और कहा कि कण्ठ करके इस श्लोक पर विचार किया करो:—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

बृहद्नारदीय पुराण।

हिन्दी अनुवाद :—

नाम नाम बस नाम ही, केवल हरि का नाम।
कलियुग में अब और नहिं, गति दूसरि बिनु नाम ॥

यह आज्ञा पाकर मैं प्रति क्षण नाम लेता हूँ। नाम लेते लेते मेरा मन भ्रान्त हो गया है, धैर्य नहीं रहता, उन्मत्त हो गया हूँ—हंसता हूँ, रोता हूँ, नाचता हूँ, गाता हूँ, जैसे मदिरा पी ली हो। तब धैर्य धर कर मन में विचार किया कि कृष्ण नाम से मेरा ज्ञान ढक गया है, मैं पागल हो गया हूँ और मेरे मन में धैर्य नहीं रहता, ऐसा विचार कर गुरु के चरणों में निवेदन किया कि हे गोस्वामीजी! आपने क्या मंत्र दिया है? इसमें क्या शक्ति है कि जपते जपते मंत्र ने मुझको पागल बना दिया है, मुझे हंसाता है, रुलाता है, और क्रन्दन कराता है। यह सुनकर गुरु मुझसे बोले कि कृष्ण-नामरूपी मन्त्र का यही स्वभाव है, जो उसका जप करता है, उसमें भाव उत्पन्न होते हैं। कृष्ण में प्रेम होना ही परम पुरुषार्थ है, जिसके सामने चारों पदार्थ तृण-तुल्य हैं। पांचवां पुरुषार्थ प्रेमानन्दामृत-सिन्धु है, जिसकी एक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बूंद की भी बराबरी मोक्ष का आनन्द नहीं कर सकता। सब शास्त्रों का यही कथन है। कृष्ण-नाम के फल से जो भक्ति उदय होती है, वह तुममें जागी है। 'प्रेम-भक्ति का स्वभाव यही है कि भक्त हंसता है, रोता है, गाता है, उन्मत्त होकर नाचता है, इधर उधर दौड़ता है, स्वेद, कंप, गद्गदाश्रु रोमांच, वैवर्ण्य, उन्माद, विषाद, धैर्य, गर्व, हर्ष, दैन्य प्रभृति भावों में भक्त-जनों को भक्ति नचाया करती है और आनन्दामृत-सागर में डुबाये रखती है। अच्छा हुआ जो तुमने परम पुरुषार्थ पा लिया है, मैं भी तुम्हारे प्रेम-भक्ति से कृतार्थ हो गया हूँ। नाचो गावो भक्तों के संग कीर्तन करो और त्रिभुवन को कृष्ण-नाम का उपदेश करके तारो।' इन्हीं गुरु के वचनों में मैं दृढ़विश्वास रख कर निरन्तर कृष्ण-नाम का कीर्तन किया करता हूँ। वही कृष्ण-नाम मुझको कभी नचाता है, कभी गवाता है, मेरी तो अपनी इच्छा नाचने गाने की नहीं। (चैतन्य चरितामृत, आदि लीला)।

कुलार्णवतन्त्र में दिया है :—

हृदये ग्रन्थिभेदः स्यात् सर्वावयववर्द्धनम्।
आनंदाश्रूणि पुलको देहावेशः कुलेश्वरि।
गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः॥

अर्थ :—हे कुलेश्वरि! जप के समय हृदय-ग्रंथि का भेद, सब अवयवों का खिंचना आनंदाश्रु, रोमांच, देहावेश और गद्गद भाव इत्यादि भक्ति के चिन्ह सहसा प्रकाश पाते हैं, इसमें संशय नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वत्स ! श्री लक्ष्मी देवी ने जब श्री नारायण से भक्ति के लक्षण पूछा तो श्री भगवान ने कहा है :—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानंदः पुलकान्वितः ।
सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादि चतुष्टयं ।
ब्रह्मतत्त्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने ॥
इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च ब्रह्मत्वञ्च सुदुर्लभं ।
स्वर्गराज्यादि भोगञ्च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति ॥
भ्रमन्ति भारते भक्तास्तादृग्जन्मसुदुर्लभं ।
मद्गुणश्रवणाः श्राव्यगानैर्नित्यं मुदान्विताः ॥
(श्री मद्देवी भागवतं ९ स्कंध ७ अध्याय)

अर्थ :—मेरे गुण कीर्तन श्रवण करने से जिनका मन आनंद विभोर होता है, सर्वांग पुलकायमान हो उठते हैं, कण्ठस्वर रुद्ध हो जाता है, नेत्रों से प्रेमाश्रु टपकने लगते हैं और बाह्यज्ञान तिरोहित हो जाता है, ऐसा व्यक्ति ही मेरा भक्त है । मेरे भक्त न सुख, न सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य मुक्तिचतुष्टय, न ब्रह्मत्व, न अमरत्व न और किसी की इच्छा करते हैं, वे केवल मेरी सेवा करने में तत्पर रहते हैं, अर्थात् मेरी सेवा के सिवाय उनको किसी बात की इच्छा नहीं होती । ऐसे भक्त कभी स्वप्न में भी दुर्लभ इन्द्रपद, मनुका पद, ब्रह्मपद अथवा स्वर्गके राज्य भोग की भी वासना नहीं करते । मेरे भक्त केवल मेरे ही गुण कीर्तन-श्रवण में लगे रहते हैं और मेरे ही सुमधुर गुण-कीर्तन में नित्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आनंदित रहते हुए भारतवर्ष में भ्रमण करते रहते हैं। परन्तु भारतखण्ड में जन्म पाना और फिर ऐसे भक्त का सा जन्म होना अति दुर्लभ है।

गुरु भक्तों के दृष्टान्त

गुरु भक्तोंमें ही गुरुतत्त्व अथवा आत्म-तत्त्व प्रकट होता है। पहले जिन गुरु-भक्तों के नाम कहे गये हैं, यहाँ पर उनका वर्णन महाभारत और छान्दोग्य उपनिषद् से लिखते हैं। शास्त्र ही हम लोगों के लिये प्रमाण है, इसलिये हम जितने शास्त्रीय प्रमाणों का संग्रह कर सकते हैं, उतनी ही हमारे हृदयों में भक्ति दृढ़ से दृढ़तर होगी। शास्त्रों के प्रमाण द्वारा जिनकी भक्ति दृढ़ नहीं होती, उनकी भक्ति चिरस्थायी नहीं रहती, क्षणस्थायी होती है। शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा जिनकी भक्ति दृढ़ है, उनकी ही उत्तम भक्तों में गणना है। देखो! नरम मिट्टी में खूँटी गाड़ना आसान है, परन्तु सख्त मिट्टी में खूँटी गाड़ना भी जैसे कठिन है, फिर उस को उखाड़ना भी वैसा ही कठिन है, वैसे ही शास्त्रीय ज्ञान-हीन हृदय में भक्ति आती भी जल्दी ही है और जाती भी शीघ्र है, परन्तु शास्त्रों के प्रमाण द्वारा जिनके हृदय में भक्ति एक वार दृढ़ बैठ जाती है, वह किसी प्रकार भी फिर कम नहीं होती, वरन दिन प्रति दिन बढ़ती रहती है। हमारे देश में अंध भक्ति और अंध विश्वास बताने का एक प्रवाद है। यद्यपि भक्ति अथवा विश्वास कभी अंध नहीं होते, तथापि इस प्रवाद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की तह में कुछ सत्यता है, ऐसा हमारी समझ में आता है। जिन लोगों को शास्त्रों के अध्ययन-जनित भक्ति या विश्वास नहीं है, अथवा जिनको स्वाभाविक भक्ति और विश्वास होनेपर भी शास्त्रीय प्रमाण द्वारा वे दृढ़ नहीं हुए हैं, उनकी भक्ति और विश्वास को ही अन्धविश्वास कहा जाता है। जिनको शास्त्र-दृष्टि नहीं, वे ही वास्तविक अन्धे हैं, उनका विश्वास भी अन्धा, उनकी भक्ति भी अन्धी। जिनको अंध-विश्वास और अंध भक्ति होती है, उनकी अवस्था ऐसी होती है कि गुरु कर लिया, उन पर खूब विश्वास, खूब भक्ति दिखाने लगे, परन्तु जभी किसी ने आकर कहा 'ओह! तुमने अमुक को गुरु किया है, वह तो कुछ जानता नहीं, उसमें तो अमुक दोष हैं' तभी उसका विश्वास अदृश्य हो जाता है। इसीलिये उनकी भक्ति की दुर्दशा है। ईश्वर के विषय में भी ठीक ऐसा ही है। कोई ईश्वर को शिव के रूप में, कोई शक्ति के रूप में, कोई विष्णु के रूप में और कोई गणेश के रूप में और सूर्य के रूप में पूजने लगता है। किसी ने आकर कहा—'शिव के पूजने से क्या होगा, शक्ति ही सब कुछ है, उसकी पूजा करो', दूसरा आकर कहता है 'ये सब कुछ नहीं, कृष्ण की पूजा कर, उससे उद्धार होगा, कृष्ण को भजा नहीं, तो कुछ नहीं होगा'। इसीप्रकार हर एक आदमी अपनी अपनी बात और अपनी अपनी युक्तिद्वारा शास्त्रीय ज्ञान-विहीन मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देता है। इसके पश्चात् वह मनुष्य कुछ भी स्थिर नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर पाता कि क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित है। उससे जो जैसा कहता है, उसी को मान लेता है और ठीक रास्ते से च्युत हो जाता है। इसप्रकार क्या अनेक जन पथच्युत होकर परधर्म ग्रहण करने को भी तैयार नहीं हो गये? इस युग में ऐसे दृष्टान्तों का अभाव नहीं है, इसलिये साधन के साथ साथ शास्त्रों का पढ़ना भी आवश्यक है, जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं है, उनके लिये अपनी अपनी मातृभाषा में मूल ग्रन्थों के अनुवाद हैं, उनको पढ़ना ही यथेष्ट है। अस्तु! यहां अब नीचे गुरु भक्तों के दृष्टान्त दिये जाते हैं।

(१) आरुणि

राजा जन्मेजय के समय आयोद धौम्य नाम के एक ऋषि रहते थे, उनके पास आरुणि, उपमन्यु और वेद नाम के तीन शिष्य थे। एक दिन गुरुजीने पांचाल-देशीय शिष्य आरुणि को यह आदेश दिया कि 'हे वत्स आरुणे! तुम खेत में जाकर उसकी मेंड़ बांधो'। गुरु-भक्त आरुणि गुरु का आदेश पाते ही वहां गया, परन्तु बहुत क्लेश उठाकर भी वह मेंड़ बांधने में समर्थ नहीं हुआ। अन्त में उसने यह उपाय स्थिर किया कि क्यारी की मेड़ जहां टूटी थी वहाँ लेट जाना चाहिये, जिससे पानी रुक जायगा। ऐसा सोचकर उसने अपने शरीर को क्यारी के टूटे बांध पर सुला दिया और पानी का बहना रुक गया। तदनन्तर गुरुजी ने अपने अन्य शिष्यों से आरुणि के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बारे में पूछा कि वह पांचाल-देशीय आरुणि दिखता क्यों नहीं ? वह कहाँ गया है ? उत्तर में शिष्यों ने कहा 'भगवन् ! आप ही ने तो उसे खेत की मेड़ बाँधने भेजा था'। शिष्यों के मुख से यह सुनकर वे बोले, 'चलो जहाँ हमारा बेटा आरुणि गया है, वहाँ ही हम सब चलें।' फिर वे क्यारी के बाँध के पास जाकर ऊँचे शब्द से पुकारने लगे, "हे बेटा आरुणि, तू कहाँ है ? आ।" गुरु के वचन सुनकर गुरु-भक्त आरुणि उस क्यारी के बाँध में से सहसा उठकर श्रीगुरु के चरणों में उपस्थित हुआ और कहने लगा, 'भगवन्! मैं यहाँ ही था, क्यारी का पानी बाहर निकला जाता था, उसे किसी प्रकार रोक न सका, तो अन्त में स्वयं उस स्थान पर सो रहा, आप की कृपा से उसका पानी फिर निकलना बन्द हो गया, अब आप का शब्द सुनकर सहसा क्यारी के टूटे हुये बांध में से निकलकर आपके चरणों में उपस्थित हूँ, श्री चरणों में अभिवादन करता हूँ, कृपा पूर्वक आज्ञा कीजिये कि अब सेवक को कौन सा काम करना है।' आरुणि की बात सुनकर श्री गुरु ने कहा बेटा ! तुम क्यारी को विदीर्ण करके उठे हो, इससे तुम्हारा आज से उद्दालक नाम प्रसिद्ध होगा, तुमने हमारी आज्ञा का पालन किया है, इसलिये तुम्हारा मंगल होगा और सब वेद और सब धर्मशास्त्र तुम्हारी बुद्धि में प्रकाशमान होंगे।' उसके पश्चात् आरुणि अपने गुरु का आशीर्वाद पाकर अपने देश को लौट गया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(२) उपमन्यु की कथा।

उसी आयोद धौम्य ऋषि के दूसरे शिष्य का नाम उपमन्यु था। गुरुजी ने उसे एक दिन बुलाकर कहा, 'बेटा उपमन्यो! तुम गौ चरा लाओ।' ऐसी आज्ञा देकर उसको गौवें चराने भेज दिया और गुरु-भक्त उपमन्यु भी गुरु का आदेश पाकर गायें चराने चला गया। प्रत्येक दिन गायें चराकर संध्या के समय गुरुजी के घर आकर गुरुजी के चरणों में उपस्थित होता और चरणों में प्रणाम करता। श्री गुरु ने उपमन्यु को हृष्ट पुष्ट देख कर एक दिन पूछा, 'बेटा उपमन्यो! तुम्हारा शरीर बहुत मोटा दिखता है, तुम क्या खाकर जीविका निर्वाह करते हो?' उत्तर में उपमन्यु ने कहा, 'मैं भिक्षा के अन्न से जीविका-निर्वाह करता हूँ।' श्री गुरु बोले, "हमारी आज्ञा के बिना भिक्षा का अन्न नहीं खाना।" श्री गुरु के इस प्रकार आज्ञा करने पर उपमन्यु, जो भिक्षा करके अन्न लाता, वह सब गुरु के सामने समर्पण कर देता। श्री गुरु उस सारे भिक्षा के अन्न को ले लेते और उपमन्यु को 'अच्छा यह ठीक है' कहकर फिर गायें चराने भेज देते। जब इसी तरह सारे दिन गौ चराकर संध्या समय गुरु के घर जाकर, गुरुजी के सामने उपस्थित होकर, चरणों में प्रणाम करता था, तो भी गुरुजी ने उपमन्यु को उसी प्रकार बलवान देखकर कहा, 'बेटा उपमन्यो! तुम्हारा सारा भिक्षान्न हम ग्रहण कर लेते हैं, अब तुम क्या खाते हो?"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपमन्यु ने उत्तर दिया, 'भगवन्! मैं जो कुछ भिक्षा लाता हूँ; वह सब आप को समर्पण करके फिर दुबारा भिक्षा ले आता हूँ, उसी से मैं शरीर की रक्षा करता हूँ।' श्री गुरु ने कहा, "बेटा! गुरुकुल में रहनेवाले शिष्यों को ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से दूसरे भिक्षार्थी ब्रह्मचारियों को भिक्षा नहीं मिलेगी, और ऐसा करने से तुमने अपने को बड़ा लोभी प्रकट किया है।" उपमन्यु ने कहा, "अब ऐसा नहीं करूँगा।" फिर उपमन्यु पहिले की तरह गायें चराने लगा और सारे दिन गायें चराकर गुरु के घर आकर पहले की तरह गुरु के सामने खड़ा होकर प्रणाम किया करता था। श्री गुरु ने फिर उसे वैसा ही मोटा ताजा देखकर कहा, "बेटा उपमन्यो! तुम भिक्षा में जो पाते हो, उस सबको हम ले लेते हैं और तुम दूसरी बार भी भिक्षा करने नहीं जाते, तो भी तुम्हारा शरीर वैसा ही हृष्ट पुष्ट कैसे दिखता है, अब क्या आहार करते हो?"

उपमन्यु ने कहा, "गुरुदेव! इन्हीं आप की गायों का दूध पीकर मैं शरीर की रक्षा करता हूँ।" गुरु ने कहा, "मैंने तो तुमको इन गायों का दूध पीने की आज्ञा दी नहीं है, हमारी आज्ञा के बिना दूध पीना उचित नहीं है।" गुरु भक्त उपमन्यु 'ऐसा ही होगा' कह कर गायें चराने चला गया और शाम को गुरु के घर लौट कर उसने श्री गुरु को दण्डवत् साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर गुरु ने पहिले की तरह उसे हृष्ट पुष्ट देखकर कहा, "बेटा उपमन्यो! तुम भिक्षा का अन्न खाते नहीं, दुबारा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भिक्षा लाते नहीं, और दूध भी नहीं पीते, तो भी तुम्हारा शरीर वैसा ही हृष्ट पुष्ट है, अब तुम क्या आहार करते हो ?" गुरु के इस प्रकार प्रश्न करने पर उपमन्यु ने उत्तर दिया, "प्रभो ! बछड़े जब थन पीते हैं, तब उनके मुख से जो फेन गिरता है, मैं उसी को खाकर जीवन धारण करता हूँ।" यह सुनकर गुरु बोले, "गायों के बछड़े तुम्हारे ऊपर दया करके अधिक फेन छोड़ते हैं, तुम उस फेन को खाकर बछड़ों को भूखा रखते हो, इसलिये उनका फेन खाना तुमको उचित नहीं है।" "ऐसा ही होगा" यह प्रतिज्ञा करके उपमन्यु फिर गायें चराने चला गया। गुरु के निषेध करने पर वह भिक्षा का अन्न नहीं खाता, दुबारा भिक्षा भी नहीं लाता, दूध भी न पीता और बछड़ों के मुख से गिरा फेन भी नहीं खाता। एक दिन क्षुधा से अत्यन्त व्याकुल होनेपर उसने आक (अर्क) के पत्ते खा लिये। क्षार, कटु, तिक्त, रुक्ष, तीक्ष्ण-विपाक उन आक के पत्तों के खाने से उस गुरु-भक्त उपमन्यु को नेत्रों का रोग हो गया और वह अन्धा हो गया। अन्धा होकर जंगल में भ्रमण करते करते एक कुएँ में गिर पड़ा सूर्य देव अस्त हो गये, तो भी उपमन्यु को घर नहीं लौटा देखकर गुरुजी ने शिष्यों से पूछा, "उपमन्यु क्यों नहीं आया ?" शिष्यों ने कहा, "जान पड़ता है उपमन्यु गायें चराने वन को चला गया है।" श्री गुरु ने कहा; "मैंने उपमन्यु का सब आहार बन्द कर दिया है, मालूम होता है, उससे वह क्रुद्ध हो गया है, इसीलिये नहीं आया। अतः बचो ! उसे ढूँढ़ना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चाहिये।" ऐसा कहकर वे शिष्यों को साथ लेकर जंगल को गये और नाम लेकर पुकारने लगे, "हे बेटा उपमन्यु! तुम कहां हो? आवो।" उपमन्यु ने इस प्रकार गुरुजी को बुलाते सुनकर ऊँचे स्वर से कहा, "गुरुदेव! मैं इस कुवें में गिर पड़ा हूँ।" श्रीगुरु ने कहा, "बेटा तुम कैसे कुवें में गिर पड़े?" श्री गुरु के प्रश्न के उत्तर में उपकन्यु ने कहा, "गुरुदेव! भूख से व्याकुल होकर आक के पत्ते खा लिये, इससे अन्धा हो गया, इसीलिये कुवें में गिर पड़ा।" यह सुनकर श्री गुरु ने कहा, "बेटा! दोनों अश्विनी कुमारों की स्तुति कर, वे देवताओं के चिकित्सक हैं, वे तुमको दृष्टि दे सकेंगे।"

श्री गुरुजी की ऐसी आज्ञा पाकर उपमन्यु ऋग्वेद-विहित मंत्रों से अश्विनी कुमारों की स्तुति करने लगा। गुरु-भक्त उपमन्यु की स्तुति से अश्विनीकुमार प्रसन्न हो उसके सामने प्रकट होकर बोले, "हम तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हुए हैं, हम तुमको यह पिट्ठी देते हैं, इसे खालो। अश्विनी कुमारों के ऐसा कहनेपर उपमन्यु ने कहा, "आप मिथ्या वचन नहीं कहते, परन्तु मैं अपने गुरुदेव को निवेदन किये बिना यह पिट्ठी कभी नहीं खाऊँगा।" तब उसके उत्तर में अश्विनीकुमारोंने कहा, "उपमन्यु देखो, पहिले तुम्हारे गुरुदेव ने हमारी स्तुति की थी, तब हमने प्रसन्न होकर ऐसी ही पिट्ठी दी थी, परन्तु उन्होंने उसका अपने गुरु को निवेदन नहीं किया था और उसी क्षण खा लिया था। जैसा तुम्हारे गुरुने किया था, वैसा तुम भी कर सकते हो।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अश्विनीकुमारों की यह बात सुनकर उपमन्यु ने उत्तर दिया, 'हे अश्विनीकुमारो ! आप से विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि मैं तो श्री गुरु को निवेदन किये बिना कभी इस पिट्ठी को नहीं खाऊंगा।" इस पर अश्विनीकुमारों ने कहा, "तुम्हारी ऐसी गुरुभक्ति से हमें अत्यन्त संतोष हुआ है।" तुम्हारे गुरु के तो काले लोहमय दन्त हैं, परन्तु तुम्हारे सुवर्णमय दन्त होंगे अर्थात् तुम्हारे गुरु तो अपने शिष्यों के साथ ऐसा निर्दय व्यवहार करते हैं, तुम अपने शिष्यों के साथ ऐसा नहीं करोगे और दयावान रहोगे। बेटा ! हम तुम को उत्तम चक्षु प्रदान करते हैं और तुम श्रेय को प्राप्त होगे।"

अश्विनीकुमारोंके प्रसन्न होकर ऐसा वरदान देने पर उपमन्यु की आखें अच्छी हो गयीं और उसने श्रीगुरु के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम किया और सब संवाद कह सुनाया। यह सुनकर श्री गुरुदेव प्रसन्न होकर कहने लगे बेटा, ! अश्विनीकुमारों ने जो कहा है, वैसा ही होगा। तुम श्रेय प्राप्त करोगे और चारों वेद और समस्त शास्त्र तुम्हारी स्मृतिमें प्रकाशमान रहेंगे।' गुरु भक्त उपमन्यु की परीक्षा समाप्त हुई।

(३) वेद की कथा

आयोदधौम्य ऋषिके तीसरे शिष्य का नाम वेद था। श्री गुरु ने उसको आज्ञा दी "हे बेटा वेद ! तुम कुछ दिन हमारे घर में रहकर गुरु-सेवा करो, उससे तुम्हारा मंगल होगा।" वेद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'ऐसा ही होगा' कहकर बहुत दिनतक गुरुकुल में ठहर कर गुरु-सेवा में जीवन व्यतीत करने लगा। श्री गुरु नित्य उस पर बैलों के सदृश नाना प्रकार का बोझ ढुलवाते थे, परन्तु गुरु-भक्त वेद शीत, ग्रीष्म, क्षुधा, तृषा सब सहता था और कभी किसी बात में प्रतकूलता न दिखाकर बहुत कालतक इसी तरह गुरुकी सेवा करता रहा। उस के पश्चात् वेद पर गुरु प्रसन्न हुए और वेद को कल्याण और सर्वज्ञता की प्राप्ति हुई। इसके पश्चात् उसने गुरु की आज्ञा लेकर गुरुकुल से समावर्तन करके गृहस्थाश्रम ग्रहण किया। अपने घर में रहते समय वेद ऋषि के तीन शिष्य हुवे। वे शिष्यों को 'यह काम करो और गुरु शुश्रुषा करो' ऐसी कभी आज्ञा नहीं करते थे, क्योंकि उन्होंने गुरुकुल में रहकर बहुत दुःख उठाया था, इसीलिये शिष्यों को कष्ट देने की उन्हें कभी इच्छा नहीं होती थी।

(४) उत्तङ्क की कथा।

अब वेद के शिष्य गुरु-भक्त उत्तङ्क का वर्णन करते हैं।

किसी समय वेद ने यज्ञ के कार्य के उपलक्ष्य में अन्यत्र जाते समय उत्तङ्क को आज्ञा दी, "हे उत्तङ्क! हमारी इच्छा है कि हमारी अनुपस्थिति में घर में जिस किसी बात की आवश्यकता पड़े तो तुम उसकी पूर्ति कर देना।" वेद उत्तङ्क को ऐसी आज्ञा देकर प्रवास को चले गये। गुरु-सेवा-परायण उत्तङ्क गुरु के बताये हुए कार्यों को करता हुआ गुरुकुल में रहने लगा। उसी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समय एक दिन गुरुदेव के घर में रहनेवाली स्त्रियों ने एकत्र होकर उत्तङ्क को बुलाकर कहा, "उत्तङ्क तुम्हारी गुरु-पत्नी ऋतुमती हो गई है, तुम्हारे गुरुदेव घर पर नहीं हैं, विदेश चले गये हैं, इसलिये जिससे ऋतुबंध न हो, वह कार्य तुम को करना होगा, क्योंकि वह अत्यन्त दुःखी हो रही है।" उत्तङ्क ने यह सुन कर उनको उत्तर दिया, "मैं स्त्रियों की बातों में पड़कर ऐसा दुष्कर्म नहीं करूँगा। गुरुदेव ने मुझको ऐसी आज्ञा नहीं दी कि तू दुष्कर्म भी करना।" कुछ कालके पीछे गुरुदेव विदेश से अपने घर आये और यह सब सुनकर उत्तङ्क के ऊपर अत्यन्त संतुष्ट हुए और बोले, "बेटा उत्तङ्क! मैं तुम्हारे लिये क्या प्रिय करूँ? तुम ने धर्मानुसार हमारी सेवा की है, अतएव हम गुरु शिष्यों में परस्पर प्रीति बढ़ती रही है, तुम को आज्ञा देता हूँ कि अब तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी सब अभिलाषाएं पूर्ण होंगी।" श्री गुरुके ऐसा कहने पर उत्तङ्क ने कहा, "मैं आपका क्या प्रत्युपकार करूँ? शास्त्र में लिखा है कि गुरु विद्यादान करके जब तक दक्षिणाग्रहण नहीं करते हैं और शिष्य धर्मपूर्वक विद्या पढ़ कर श्रीगुरु को दक्षिणा नहीं देता है, तो दोनों में से एक मर जाता है और परस्पर में द्वेष उत्पन्न हो जाता है, इसलिये आप आज्ञा करें कि मैं गुरु-दक्षिणा संग्रह करने का यत्न करूँ।" तब गुरुजीने कहा,—"बेटा उत्तङ्क! तो कुछ दिन और हमारे घर में वासकरो, तब कहेंगे।" कुछ दिन पीछे उत्तङ्क श्रीगुरुदेव से बोला, "आज्ञा करें कि क्या गुरु-दक्षिणा देकर आपका संतोष प्राप्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करूँ, जो आप कहें, उसका मैं संग्रह करूँगा।" भक्त उत्तङ्क के इस प्रकार गुरु से प्रार्थना करने पर श्री गुरु ने कहा, "बेटा उत्तङ्क! तुम बार बार हमको कहते हो कि क्या दक्षिणा दूँ, इसलिये तुम घर में जाकर अपनी गुरुपत्नी के पूछो कि गुरु-दक्षिणा में क्या लाना होगा, वह जो कहे वह ले आना।" गुरुदेव की आज्ञा पाकर उत्तङ्क गुरुपत्नी से पूछने गया, "हे भगवति! गुरुदेव ने मुझको घर जाने की आज्ञा दे दी है, परन्तु आप जो मांगें, वह गुरुदक्षिणा मैं संग्रह करके गुरु—ऋण से मुक्त होकर अपने घर समावर्तन करना चाहता हूँ।" इसलिये आप आज्ञा करें कि मुझे गुरुदक्षिणा के लिये क्या लाना पड़ेगा।" उत्तङ्क की यह प्रार्थना सुनकर गुरु पत्नी बोली, "बेटा उत्तङ्क! पौष्य राजा के पास जाकर उससे उसकी रानी के लिये बनवाये हुए दोनों कुण्डल भिक्षा मांगकर लाओ। आगामी चौथे दिन पुण्यक नामक व्रत के उपलक्ष में उत्सव होगा, मैं उस दिन दोनों कुण्डलों को पहन कर अलङ्कृत और सुशोभित होकर ब्राह्मणों को भोजन परोसने की इच्छा करती हूँ। अतएव तुम यह कार्य पूरा करो, ऐसा करने से तुम्हारा मंगल होगा, ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारा किसी प्रकार मंगल नहीं होगा।"

गुरु-पत्नी की आज्ञा पाकर उत्तङ्क उन कुण्डलों को लेने के लिये चल दिया। जाते जाते रास्ते में देखा कि एक बड़े आकार वाला पुरुष एक बड़े वृषभ पर बैठा हुआ जा रहा है। उसने उत्तङ्क को देखकर कहा,—"हे उत्तङ्क! इस बैल का यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोवर खाले।" परन्तु उत्तङ्क ने खाने से इनकार कर दिया। उस पुरुष ने फिर कहा, "उत्तङ्क! इसे खाले, इसे खाने में टाल-मटोल मत करं, विचार मत कर, पहले तेरे गुरु ने खाया था।" यह सुनकर उत्तङ्क सहमत हो गया और वृषभ का मूत्र और गोबर खा कर चल पड़ा, फिर भ्रम से रास्ते में चलते चलते उसने आचमन करके प्रस्थान किया और तदन्तर पौष्य नामक क्षत्रिय राजा के पास पहुँचकर देखा कि वह अपने आसन पर बैठा है। उतङ्क ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा, "राजन्! मैं कुछ भिक्षा मांगने आप के पास आया हूँ।" राजा ने उसका उचित अभिवादन करके कहा, "भगवन्! मैं आपका दास पौष्य हूँ. जो चाहिये आज्ञा कीजिये।" उत्तङ्क ने कहा, "मैं गुरु-दक्षिणा में देने के लिये आप की धर्मपत्नी जो दोनों कुण्डल पहने है, उनकी भिक्षा मांगने आया हूँ, आप उनका दान कीजिये।" राजा पौष्य ने उसी समय कहा, "अन्तःपुर में जाकर हमारी पत्नी से याचना करें।" उत्तङ्क राजा के कथनानुसार अन्तःपुर में चला गया और राजा की पत्नी को न देख पाने के कारण पौष्य राजा के पास फिर आकर उसने कहा, "महाराज! मुझसे ऐसी मिथ्या वञ्चना करना आप को उचित नहीं, अन्तःपुर में आप की धर्म-पत्नी नहीं है, यदि होती तो अवश्य मुझे दिखती।" यह सुनकर पौष्य कुछ क्षण विचार करके बोला, "भगवन्! स्मरण करके देखो, अवश्य आप का मुख उच्छिष्ट होगा। उच्छिष्ट अथवा अपवित्र मनुष्य को हमारी पत्नी नहीं दिख पड़ती, वह पतिव्रत-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परायण है, इसलिये वह अशुचि मनुष्य को दृष्टिगोचर नहीं होती।" राजा की यह बात सुनकर उत्तङ्क ने स्मरण करके कहा, "हां, आते समय सहसा चलते चलते खड़े होकर ही आचमन कर लिया था।" तब पौष्य ने कहा, "आप को व्यतिक्रम हुआ है, क्योंकि खड़े होकर या चलते-चलते आचमन करना शास्त्र-संगत नहीं है।" 'आप ने यथार्थ कहा' ऐसा कहकर उत्तङ्क ने पूर्वमुख होकर उपवेशन करके हाथ पैर और मुख धोकर मौन होकर तीन बार फेन रहित हृदय पर्यन्त जाने योग्य पानी पीकर, दो बार होठ धोकर और विहित इन्द्रियों का स्पर्श पूर्वक आचमन करके अन्तःपुर में प्रवेश किया और तब वहाँ ही पौष्य की पत्नी को देखा। पौष्य की पत्नी ने उत्तङ्क को देखकर गात्रोत्थान पूर्वक यथाविहित नमस्कार और स्वागत करके जिज्ञासापूर्वक कहा, "भगवन्! आज्ञा करें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" उस के उत्तर में उत्तङ्क ने कहा, "गुरु-दक्षिणा के लिये मैं आपके कानों को शोभित करने वाले दोनों कुण्डलों की भिक्षा चाहता हूँ, मुझको आप उनका दान करें।" उत्तङ्क की ऐसी गुरुभक्ति देख कर पौष्य पत्नी बड़ी प्रसन्न हुई और यह वास्तविक सत्पात्र है, इसकी प्रार्थना भंग नहीं करनी चाहिये, ऐसा निश्चय करके अपने दोनों कानों के कुण्डल गुरुभक्त उत्तङ्क को प्रदान कर दिये और कहा कि नागराजा तक्षक ने किसी समय इन दोनों कुण्डलों के लिये मुझ से प्रार्थना की थी, परन्तु मैंने उसकी प्रार्थना पूर्ण नहीं की, इसलिये आप इनको बड़ी सावधानी से ले

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाइए। यह सुन कर उत्तङ्क ने कहा, "भगवति! इस विषय में आप किसी बात की चिन्ता न करें, तक्षक मेरे पास से इन कुण्डलों को लेने में बिलकुल भी समर्थ नहीं हो सकता।" इस प्रकार पौष्य की पत्नी को आश्वासन देकर राजा पौष्य के पास आया और कहा, "हे प्रभो! मुझे परम संतोष हुआ है।" पौष्य ने कहा, 'भगवन्! सदा सत्पात्र तो मिलते नहीं, आप सर्वगुण संपन्न अतिथि भाग्यवश हमारे घर आये हैं, इसलिये मैं श्राद्ध करने की इच्छा करता हूँ, आप एक क्षण दया पूर्वक और ठहरें। उसके उत्तर में उत्तङ्क ने कहा, "मैं प्रतीक्षा करता हूँ, जो अन्न उपस्थित हो, वह आप शीघ्र ले आवें।" पौष्य ने यह स्वीकार करके जो अन्न था, लाकर उसको भोजन कराया। उतङ्क ने ठंडा और बाल पड़ा हुआ अन्न देखकर अपवित्र समझ पौष्य से कहा, "तुमने हमको अपवित्र अन्न दिया है, इसलिये तुम अंधे हो जाओगे।" पौष्य ने कहा, "तुमने दोष-रहित अन्न में वृथा दोषारोपण किया है, इसलिये तुम सन्तान रहित रहोगे।" उत्तङ्क ने उत्तर दिया, "अपवित्र अन्न देकर उलटा शाप देना उचित नहीं, यह अन्न अपवित्र है या नहीं, यह आप स्वयं प्रत्यक्ष देखलें।" ऐसा सुनकर पौष्य ने उस अन्न को देखकर उसमें अपवित्रता पाई। तदन्तर वह अन्न केश खोले हुए स्त्री द्वारा लाया हुआ ठंडा और बाल पड़ा हुआ जान कर राजा को उसकी अपवित्रता में कुछ संदेह नहीं रहा। तब पौष्य राजा सोचने लगा कि उत्तङ्क ऋषि कैसे प्रसन्न हों और विनयपूर्वक कहने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लगा, "भगवन् ! वे जाने ऐसा शीतल और बालयुक्त अन्न ले आया, अब आप दया करके हमको क्षमा करें, जिससे कि मैं अंधा न होऊं। उत्तङ्क ने कहा, "पौष्य ! मैं सत्य-सङ्कल्प हूँ, मेरा कहा कभी मिथ्या नहीं हो सकता, इसलिये मैं कहता हूँ कि आप अंधे होकर शीघ्र ही आँखों वाले हो जायँ। आपने मुझे जो शाप दिया है, वह मुझे न होवे।" पौष्य ने कहा, "मैं शाप वापिस लेने में समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि अभीतक मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ है। आप क्या नहीं जानते कि ब्राह्मण का हृदय नवनीत के सदृश कोमल जल्दी ही पिंघल जाता है और उनके वचन तीक्ष्ण धारवाले उस्तरे के सदृश होते हैं, परन्तु क्षत्रिय के ये दोनों विपरीत होते हैं, अर्थात् क्षत्रियों के वचन नवनीत के तुल्य कोमल और हृदय तीक्ष्णधार वाले उस्तरे जैसा होता है. इस जाति-सिद्ध तीक्ष्ण-हृदयता-युक्त शाप अन्यथा नहीं हो सकता। आप जाइये।" पौष्य की यह बात सुनकर उत्तङ्क ने कहा, "आप ने अन्न की अपवित्रता प्रत्यक्ष देखकर विनयपूर्वक क्षमा की प्रार्थना की और कहा कि दोषरहित अन्न में अपवित्रता का दोष लगाते हो, इसलिये निःसंतान् होवोगे। अब जब अन्न में दोष प्रत्यक्ष देखा है, तब आपका दिया शाप हमको लगेगा नहीं, लो मैं जाता हू।" ऐसा कहकर उत्तङ्क दोनों कुण्डल लेकर चल पड़ा। उत्तङ्क ने जाते-जाते रास्तेमें देखा कि एक नग्न संन्यासी जो कभी दिख पड़ता है और कभी अदृश्य हो जाता है, सामने से आ रहा है। उसके पीछे उत्तङ्क उन दोनों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुण्डलों को पृथ्वी पर रख कर लघुशंका करने लगा। उसी समय वह संन्यासी दौड़ता हुआ आकर दोनों कुण्डलों को हाथ में उठाकर भाग गया। उत्तङ्क लघुशंका से निवृत्त होकर पवित्र होकर मन को एकाग्र करके, ईश्वर और गुरु को नमस्कार करता हुआ बड़े वेग से संन्यासी के पीछे दौड़ने लगा। जब उसके बहुत निकट पहुँचा तब उसे पकड़ लिया। संन्यास-वेशधारी तक्षक अपना बनावटी वेश त्यागकर अपना असली तक्षक का रूप धारण करके तत्क्षण उसी स्थान में एक बड़े बिल द्वारा पृथ्वी के अंदर घुस गया और फिर वहाँ से नाग-लोक में जाकर अपने भवन में चला गया।

उत्तङ्क राजा पौष्य की रानी के वचन स्मरण करके तक्षक के पीछे-पीछे जाने के लिये लकड़ी के डंडे से उस बिल को खोदने लगा, परन्तु किसी प्रकार उसमें सफल न हो सका। तब देवराज इन्द्र ने, उत्तङ्क के कष्ट को देखकर अपने वज्र को यह आज्ञा देकर वहाँ भेजा कि 'वज्र! जाओ उस ब्राह्मण की सहायता करो।' इन्द्र की आज्ञा पाकर वज्र ने उस लकड़ी के डंडे के अग्र भाग में प्रवेश करके बिल को विदीर्ण कर दिया। फिर उत्तङ्क ने उस बिल के रास्ते से घुस कर नागलोक में जाकर नाना प्रकार के महल, हवेलियाँ, घर और द्वार इत्यादि अनेक आश्चर्यमय क्रीडा-स्थान देखे और फिर वह नागों की स्तुति करने लगा। सर्वश्रेष्ठ नागों की अनेक स्तुति करने पर भी कुण्डल न मिलने पर ब्रह्मर्षि उत्तङ्क बड़ा चिन्तित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हुआ। उस समय उसने एक पुरुष को और एक सुंदर घोड़े को देखा। उत्तङ्क ने उनको देखकर कहा, "हे महात्मन्! काले कपड़े पहने, वज्र धारण किये हुवे जो नमुचि और वृत्रासुर का वध करनेवाले हैं, जो त्रिभुवन की रक्षा करते हैं, यह वैश्वानर तुल्य, सिंधु से उत्पन्न तेजस्वी घोड़ा जिनका वाहन है, उन्हीं त्रिलोकीनाथ विश्वपति पुरेन्द्र को नमस्कार करता हूँ।" गुरु-भक्त उत्तङ्क की स्तुति सुनकर वह पुरुष बोला, "हे उत्तङ्क! तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा जो प्रिय कार्य करना हो वह कहो।" उसके उत्तर में उत्तङ्क ने उससे कहा, "सब सर्प मेरे वश में हो जायें।" उस पुरुष ने फिर कहा, "हे उत्तङ्क! इस घोड़े की गुदा में फूंक मारो।" उस पुरुष के कहने के अनुसार ब्रह्मर्षि उत्तङ्क के अश्व की गुदा में फूँक मारने पर घोड़े के शरीर के सब छिद्रों से धुवें सहित अग्नि की ज्वाला निकलने लगी और उस अग्नि की ज्वाला से नागलोक तपने लगा, तब कुण्डलों का चोर तक्षक अग्नि के भय से डर कर और घबरा कर दोनों कुण्डलों को लिये घर से हठात् बाहर आकर गुरु-भक्त उत्तङ्क से कहने लगा, "ये लीजिये अपने दोनों कुण्डल।" उत्तङ्क दोनों कुण्डल लेकर सोचने लगा, "आज ही गुरु पत्नीके पुण्यक व्रत का दिन है, मैं बहुत दूर आ गया हूँ, किस तरह समय पर वहाँ पहुँचकर यह कार्य पूरा कर सकूँगा।" उत्तङ्क इस प्रकार चिन्ता कर रहा था, उसी समय उस पुरुष ने उससे कहा, "उत्तङ्क! इस घोड़े पर बैठो, यह एक क्षण में ही गुरु के

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घर तुमको पहुँचा देगा।" उत्तङ्क 'ऐसा ही हो' कह कर उस घोड़े की पीठ पर चढ़ कर एक क्षण में ही श्री गुरु के घर लौट आया।' जिस समय गुरुपत्नी ने स्नानादि करके उपवेशन पूर्वक केशों को संवारते-संवारते यह विचार कर 'कि अभी तक तो उत्तङ्क आया नहीं' शाप देने का संकल्प किया, उसी समय ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने गुरु गृह में प्रवेश किया और श्री गुरुपत्नी को नमस्कारपूर्वक दोनों कुण्डल भेंट किये।

गुरुपत्नी ने उत्तङ्क से कहा, "बेटा! उत्तङ्क! तुम्हारा मंगल हो तुम बड़े अच्छे समय पर आ गये हो, सौभाग्य से मैंने तुमको बिना दोष के शाप नहीं दिया, इस समय तुम्हारा श्रेय उपस्थित है, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी।" तदन्तर उत्तङ्क ने श्रीगुरु को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। गुरु ने कुशल मंगल पूछ कर कहा, "बेटा उत्तङ्क! तुम्हें इतना विलंब क्यों हुआ?" उसके उत्तर में उत्तङ्क ने कहा, "नागराज तक्षक मेरे दोनों कुण्डल ले गया था, इसीलिये विघ्न हो गया था। अतः मैं नागलोक में गया। हे गुरु देव! वहाँ देखा कि दो स्त्रियाँ कपड़ा बुन रही हैं, जिस का सारा सूत काला और श्वेत है। वह क्या था? और यह भी देखा कि छः लड़के १२ तीलियों के एक चक्र को घुमा रहे हैं। वे कौन थे? एक पुरुष को देखा, वह भी कौन था? और एक बड़ा घोड़ा देखा, वह क्या था? पौष्य राजा के घर जाते समय रास्ते में एक पुरुष देखा, वह अनुरोध पूर्वक मुझसे कहने लगा, "कि हे उत्तङ्क! तू इस वृषभ का गोबर खा ले, पहले तेरे गुरु ने भी खाया है।" उस की

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह बात सुन कर मैंने भी वृषभ का गोवर खा लिया। जिसने मुझसे गोवर खाने को कहा वह कौन था? मैं आप के श्री मुख से यह सब सविशेष जानने की इच्छा करता हूँ।" उत्तङ्क ने जो पूछा उसके उत्तर में श्री गुरु ने कहा, 'वेटा! तूने जो दो स्त्रियाँ देखी थीं, वे धाता विधाता थीं। जो श्वेत और काले धागे देखे थे, वे दिन और रात्रि हैं और जो चक्र देखा था, वह संवत्सर है और जो छः कुमार १२ तीलियों के चक्र को घुमा रहे थे, वे छः ऋतु हैं, और जिस पुरुष के दर्शन किये, वे देवताओं के राजा इन्द्र हैं और घोड़ा अग्नि। और जो गोवर खाया, वह अमृत था। वेटा! तुम उस अमृत को खाकर ही नागलोक में भी जाकर नहीं मरे। वे इन्द्र भगवान मेरे मित्र हैं, उन्हीं ने तुम्हारे जैसे गुरु-भक्त का क्लेश देखकर दयावान होकर इस प्रकार अनुग्रह किया है और एकमात्र उसी से तुम दोनों कुण्डल लेकर लौटने में समर्थ हुए हो। इसीलिये हे सुशील! मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर तुमको अनुमति देता हूँ कि अपने घर जाओ और श्रेय प्राप्त करो।' श्रेय शब्द का अर्थ परम मंगल-स्वरूप मोक्ष समझना चाहिये।

(५) सत्यकाम जावाल की कथा।

जवाल के पुत्र सत्यकाम ने एक मात्र गुरु-भक्ति के द्वारा ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था, इस उपाख्यान का छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णन है, वह हम अब कहते हैं।

जवाला नाम की एक अत्यन्त सदाचार-सपन्ना ब्राह्मणी थी। उसका सत्यकाम नामक एक पुत्र था। जब सत्यकाम का विद्या-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्ययन का वय हुआ, तब एक दिन गुरु के घर जाने की इच्छा उसने अपनी माता से प्रकट की और कहा, "हे मां! मैं ब्रह्मचर्य पालन पालन करके गुरुगृह में रहकर गुरु-सेवा करने की इच्छा करता हूँ। यदि गुरु ने मेरा नाम और गोत्र पूछा तब मैं क्या उत्तर दूँ? नाम तो जानता हूँ, परन्तु मां! मेरा गोत्र क्या है, यह तो ज्ञात नहीं, इसलिये मेरा क्या गोत्र है, सो बता दे।" तब जवाला ने कहा, "वेटा! तुम्हारा गोत्र क्या है, यह मैं भी नहीं जानती। वेटा! मैंने युवावस्था में तुझको पाया था, अर्थात् तुझको जन्म दिया था। उस समय हमारे घर बहुत अतिथि अभ्यागत आया जाया करते थे, उनकी सेवा परिचर्या करना और उनकी सेवा का भार मेरे ऊपर था, मुझे अधिक समय नहीं मिलता था, इसलिये तुम्हारे पिता से तुम्हारा गोत्र पूछ न सकी, इस लिये मैं नहीं जानती कि तेरा क्या गोत्र है। मैं तो यही जानती हूँ कि मेरा नाम जवाला है और तेरा नाम सत्यकाम है। वेटा गुरु के घर जानेपर तुम्हारा गुरु यदि तुमसे गोत्र पूछे, तो कहना कि मैं जवाला का पुत्र हूँ और मेरा नाम सत्यकाम है।" माता की आज्ञा पाकर सत्यकाम ने महर्षि हरिद्रुम के पुत्र गौतम ऋषि के पास जाकर कहा, "हे भगवन्! मैं ब्रह्मचर्य-पालन पूर्वक वेदादि का अध्ययन करूँगा और आप की सेवा करूँगा, आप मुझे शिष्य स्वीकार करें।" तब गौतम ऋषि बड़े प्रेम पूर्वक बोले, 'हे सौम्य! तुम्हारा गोत्र क्या है?' सरल भाव से परिपूर्ण वालक सत्यकाम ने सविनय कहा, "भगवन्! मेरा गोत्र क्या है, मैं नहीं जानता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपनी माता से पूछने पर माता ने मुझसे कहा है, "यौवन काल में मैंने तुझको पाया है, तब मेरे घर बहुत अतिथि अभ्यागत आया जाया करते थे और मैं उनकी सेवा में लगी रहती थी इसलिये तेरे पिता से तेरा गोत्र पूछने का समय नहीं मिला और यौवन काल में ही तेरे पिता का वियोग हो गया। मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम सत्यकाम है। हे देव! मैं उसी जबाला का पुत्र सत्यकाम हूँ।" सत्यवादी और सरल हृदय सत्यकाम की सरलता-पूर्ण सत्य बात को सुन कर गौतम ऋषि अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगे, "बेटा सत्यकाम! मैंने जान लिया तुम निश्चय ही ब्राह्मण हो, क्योंकि ब्राह्मण के सिवाय ऐसी सरलता-पूर्ण सत्य बात दूसरा कोई नहीं कह सकता, 'नैतदब्राह्मणविवक्तुमर्हति'। जाओ पुत्र तुम समिधा संग्रह करके ले आओ, मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार कराऊँगा और तुमको उपनयन दूँगा।" ऐसा कह कर गौतम ऋषि ने सत्यकाम का विधिवत उपनयन संस्कार किया और दुबली पतली दुर्बल ४०० गायें देकर कहा, "बेटा जबतक ये ४०० गायें पूरी एक हजार न हों, तबतक तुम इनको वन में ले जाकर चराओ और एक हजार होनेपर घर लौटो।" सत्यकाम ने उन गायों को लेकर जाते समय कहा, "भगवन्! जबतक एक हजार गायें पूरी नहीं होंगी, तबतक में लौट कर घर नहीं आऊँगा।"

जब तक वे चार सौ गायें संख्या में एक हजार नहीं हुईं, तब तक सत्यकाम को प्रवास में रहना पड़ा। इस प्रकार वन-वन में

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घूमते-घूमते जब वे गायें एक हजार हो गयीं तब एक दिन दिशाओं का अधिपति वायु सत्यकाम की गुरुनिष्ठा से संतुष्ट होकर सत्यकाय को ब्रह्मविद्या का उपदेश करने के लिये एक वृषभ के देह में प्रवेश करके बोला, 'हे सत्यकाम!" तब सत्यकाम ने उत्तर में कहा, "भगवन् ! क्या आज्ञा है ? कहिये।" तत्पश्चात् उसने कहा, "हे सौम्य ! देखो हमारी संख्या अब एक हजार पूरी हो गई है, अब तुम हमको गुरु के घर ले चलो। तुम्हारी गुरु-सेवा से मैं संतुष्ट हूँ, इसलिये मैं तुमको चतुष्पाद ब्रह्म के एक पाद का उपदेश करना चाहता हूँ।" तब सत्यकाम ने कहा, "भगवन् ! उपदेश करें।" तब वृषभ ने उपदेश किया, 'चतुष्पाद ब्रह्म के पद की कला या अंश यह पूर्व दिशा है, ऐसी ही पश्चिम, दक्षिण और उत्तर तीनों दिशायें भी उस पाद की तीन कलायें हैं, इस प्रकार चारों कलाएँ या अंश मिलकर ब्रह्म का एक पाद, होता है, ब्रह्म के इस एक पाद को प्रकाशमान-संज्ञक पाद कहते हैं। अग्नि तुमको दूसरे पाद का उपदेश करेंगे।'

ऐसा कह कर वृषभ चुप हो गया। दूसरे दिन प्रभात होने पर नित्य कर्म करके सत्यकाम एक हजार गायों को लेकर गुरु के घर के लिये रवाना हो गया। धीरे-धीरे चलते-चलते जिस समय जिस स्थान पर संध्या हो गयी, उसी समय उसी स्थान पर अग्नि की स्थापना करके उन एक हजार गायों को बांध कर लकड़ी संग्रह करके पूर्वाभिमुख होकर अग्नि के पश्चिम ओर बैठ कर वृषभ देहधारी वायु देवता की बात स्मरण करने लगा। तब अग्नि ने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुकारा, 'सत्यकाम !' तब सत्यकाम ने उत्तर दिया, 'भगवन् !' अग्नि ने कहा, "वत्स ! मैं तुमको ब्रह्म के एक पाद का उपदेश करता हूँ ।" सत्यकाम ने कहा, "भगवन् ! मुझे अवश्य उपदेश करें ।" अग्नि देव ने सत्यकाम से कहा, "पृथिवी एक कला, अन्तरिक्ष एक कला, द्युलोक एक कला और समुद्र एक कला, ये चारों कलायें मिलकर ब्रह्म का अनन्त नामक दूसरा पाद है । हंसस्वरूप आदित्य आविर्भूत होकर तुमको ब्रह्म के तीसरे पाद का उपदेश करेंगे ।" इतना कहकर अग्निदेव चुप हो गये । उस के अगले दिन, अर्थात् तीसरे दिन सत्यकाम रात्रि बीतने पर प्रभात में नित्य कर्मादि से निवृत्त होकर गायों को लेकर फिर गुरु गृह की ओर चल पड़ा और जिस स्थान पर संध्या हुई, उसी स्थान पर अग्निस्थापन करके यथास्थान गायों को बांध कर समिधा एकत्रित करके और फिर पूर्वाभिमुख होकर अग्नि की पश्चिम ओर बैठ गया, तब हंस ने उसके पास आकर कहा, "हे सत्यकाम !" सत्यकाम ने उत्तर में कहा, "भगवन् !' तब हंस कहने लगा, "हे सौम्य, मैं तुमको ब्रह्म के तीसरे पाद का उपदेश करना चाहता हूँ ।" सत्यकाम ने कहा, 'भगवन् आप मुझको उस का उपदेश करें ।" हंस ने कहा, "अग्नि एक कला, सूर्य एक कला, चन्द्र एक कला और विद्युत एक कला, ये चारों कलायें ब्रह्म का ज्योतिष्मान्-पाद-नामक तृतीय पाद हैं । मद्गु (एक प्रकार का जलचर पक्षी) तुम को ब्रह्म के चौथे पाद का उपदेश करेगा ।" ऐसा कहकर हंस चला गया ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसके अगले दिन अर्थात् चौथे दिन प्रभात होने पर नित्य कर्मादि पूर्ववत् करके गायों को लेकर सत्य काम गुरु-गृह के लिये चल दिया और जिस स्थान पर संध्या हुई, उसी स्थान पर अग्नि प्रज्वलित करके यथास्थान पर गायों को रखकर समिधा लाया और पूर्वाभिमुख होकर अग्नि के पश्चिम की ओर बैठ गया, तब प्राण देवता मद्गुरु रूप धारण कर उस के समीप आकर कहने लगे, 'सत्यकाम !' सत्यकाम ने उत्तर दिया, "भगवन्" । मद्गु ने कहा 'हे वत्स ! हम तुम को ब्रह्म के चतुर्थ पाद का उपदेश करते हैं ।' सत्य काम ने उत्तर में कहा, "भगवन् ! मुझ को उसका उपदेश करें ।" मद्गु के रूप में आविर्भूत प्राण-देवता ने सत्यकाम से, "कहा, प्राण एक कला, चक्षु एक कला, श्रोत्र एक कला, और मन एक कला है । ये चारों कलायें ब्रह्म का आयतवन-नामक चौथा पाद है ।" सत्यकाम इस प्रकार श्री गुरु के घर लौटते समय मार्ग में गुरु की भक्ति के बल ब्रह्म की चारों कलाओं सहित चारों पादों को चार देवताओं के उपदेश से जान कर ज्ञान प्राप्त करके गुरु के घर पर उपस्थित हुआ । आचार्य गौतम ने उस से कहा, 'सत्यकाम !' सत्यकाम ने उत्तर दिया, 'भगवन् ।' तब श्री गुरु ने कहा, "हे सौम्य ! तुम्हारा प्रसन्न और हास्ययुक्त मुख और चिन्ता रहित अवस्था देख कर तुम ठीक ब्रह्मवित् के सदृश दिख पड़ते हो ! बताओ तो वत्स । यह ब्रह्मोपदेश किसने किया है ?" तब सत्यकामने उत्तर दिया, 'भगवन् ! मनुष्य से भिन्न चार देवताओं ने मुझको ब्रह्म के चार पादों का उपदेश किया है ।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यहाँ मनुष्य से भिन्न कहने का तात्पर्य यह है कि गौतम ऋषि के सदृश व्यक्ति के शिष्य को दूसरा कौन मनुष्य उपदेश करने में समर्थ हो सकता है, अर्थात् गौतम ऋषि का शिष्य होकर दूसरे मनुष्यों के पास सत्यकाम उपदेश लेने नहीं गया,--इसीलिये सत्यकाम ने कहा, 'मनुष्य से भिन्न इत्यादि। वास्तव में जिसे भाग्य से सद्गुरु मिल गये हैं और उस गुरु में जिस की श्रद्धा भक्ति है, वह कभी दूसरे के पास ज्ञानोपदेशार्थ प्रार्थना नहीं करेगा, परन्तु यहाँ तो सत्यकाम की गुरु-निष्ठा देख कर देवता भी प्रसन्न होकर स्वतः ही उसे उपदेश करने आये थे।

तदन्तर सत्यकाम ने कहा, "भगवन ! यद्यपि मैंने किसी मनुष्य से यह उपदेश नहीं पाया है; देवताओं ने कृपा पूर्वक मुझे उपदेश किया है; तथापि मेरी यह इच्छा है कि आप मुझको फिर उसी ब्रह्मज्ञान का उपदेश करके कृतार्थ करें, क्योंकि मैंने आप जैसे ऋषियों से सुना है कि श्री गुरु से जो विद्या प्राप्त की जाती है, वही विद्या अतिशय फलप्रद होती है।" श्री गुरु गौतम ने सत्यकाम की भक्ति से संतुष्ट होकर उसी ब्रह्म विद्याका जो सत्यकाम को देवताओं से प्राप्त हुई थी, फिर एक बार उपदेश किया। गौतम ऋषि ने कोई रहस्य छुपाकर नहीं रखा। देवताओं ने जैसे ब्रह्म की १६ कलाओं का उपदेश किया था, उन्होंने भी सब कलाओं का उसे पूरा पूरा उपदेश किया और श्री गुरु गौतम की कृपा से सात्यकाम का ज्ञान पूर्ण हो गया।

धन्य सत्यकाम की गुरु-भक्ति ! ऐसा गुरु-भक्ति-परायण और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सेवा-परायण शिष्य ही वास्तविक तत्त्वज्ञान का अधिकारी होता है, और ऐसे ही भक्त-शिष्यों को तत्त्व प्रकाशित होता है, इसीलिये श्रुति माता कहती है :—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(६) तोटकाचार्य की कथा।

गिरि नामका एक ब्राह्मण का लड़का, जो सन्यास लेने के पश्चात् तोटकाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ है, मूर्ख होने पर भी एकमात्र श्री गुरु-सेवा द्वारा श्री गुरु की कृपा से किस प्रकार विद्या प्राप्त करके ज्ञानी हुआ, वही श्री युत राजेन्द्रनाथघोष कृत 'आचार्य शङ्कर और रामानुज' नामक पुस्तक से उद्धृत करके यहाँ देते हैं।

एक समय गिरि नामक एक ब्राह्मण के लड़के ने आकर आचार्य की शरण ग्रहण की। गिरि बिलकुल निरक्षर था और उस की यथार्थ साधु बनने की इच्छा थी। वह आचार्य और उनके शिष्यों के विद्यानुराग और शास्त्रीय वार्तालाप को सुन हताश होकर आचार्य की सेवा में प्रवृत्त हो गया। गुरु की सेवा ही सब विद्याओं की मूल है, यह जान कर उसने सेवा का ही एक मात्र अवलंबन ले लिया। स्वभाव का गिरि बड़ा मीठा बोलने वाला, विनीत, आलस्य-रहित और सब का कार्य करने में तत्पर रहता था। वह सब का संतोष प्राप्त करने का यत्न करता रहता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

था और आचार्य के संग सदा रहता था। गिरि के कारण दूसरे शिष्य किसी प्रकार आचार्य की सेवा करने का अवकाश नहीं पा सकते थे। आचार्य जब शिष्यों को पढ़ाते थे अथवा उपदेश करते थे, गिरि तब हाथ जोड़कर खड़ा रहता था। परन्तु कुछ समझ में न आने पर भी गिरि यह प्रकट नहीं होने देता था कि मेरा मन नहीं लगता। एक दिन आचार्य पढ़ाने के निमित्त बैठे, प्रणामादि समापन्न हो जाने पर भी बैठे रहे, इधर उधर देख कर भी पाठ आरंभ न किया। सब शिष्य यह देखकर विस्मयपूर्वक देखने लगे। पद्मपाद नामक शिष्य का उद्वेग कुछ अधिक बढ़ा, उसने कहा, "भगवन्! आप ने पाठ क्यों बंद कर दिया? किस की प्रतीक्षा कर रहे हैं?"

आचार्य ने कहा, "क्या तुम सब लोग आ गये हो? गिरि तो दिखाई नहीं पड़ता। उसे आने दो।" इसी प्रकार और भी कुछ समय बीत गया, गिरि आया नहीं। अन्त में एक शिष्य ने कहा, "भगवन! गिरि नदी पर आप के वस्त्र धो रहा है।" कुछ भी हो आचार्य की इच्छानुसार सभी गिरि के लिये प्रतीक्षा करने लगे। पद्मपाद ने सोचा कि गुरुदेव गिरि के लिये क्यों प्रतीक्षा कर रहे हैं, वह तो सर्वथा निरक्षर है, कुछ भी तो नहीं समझ सकता। पद्मपाद का उद्वेग इतनी ही देर में विस्मय में बदल गया। उसने कौतूहल से कहा, "भगवन्! गिरि तो बिलकुल निरक्षर है, क्या वह आप का उपदेश समझने में समर्थ होगा?" आचार्य ने पद्मपाद की बात सुनकर कुछ मुस्कराकर कहा,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'अच्छा उसे आने दो, न समझे, परन्तु वह बड़ी श्रद्धा से सब सुनता है।'

उस समय गिरि का भाग्य उदय हुआ, उसकी गुरु भक्ति ने उसे सब विद्याओं का अधिकारी बना दिया। ग्रहण करने और धारण करने का सामर्थ्य और श्रद्धा ही अधिकारी बनाती है। उपदेश-ग्रहण करने का सामर्थ्य जिन को नहीं और गुरु में और उनके उपदेशपर श्रद्धा जिनको नहीं, वे कभी उपदेश के अधिकारी नहीं होते। ग्रहण करने का अधिकारी भी दो प्रकार का होता है—लौकिक और शास्त्रीय। बुद्धि और संस्कृत भाषा का ज्ञान होना, विद्या ग्रहण करने के लिये लौकिक अधिकार है, परन्तु शास्त्रानुसार संस्कार न होने तक विद्या-प्राप्ति के लिये शास्त्रीय अधिकार होता नहीं। गिरि को केवल बुद्धि और संस्कृत भाषा के ज्ञान का अभाव होने से ही विद्या ग्रहण करने का लौकिक सामर्थ्य नहीं था। उपनयनादि होने से वैदिक उपदेश ग्रहण करने में शास्त्रीय अधिकार उसे था। उस समय अति उत्कट गुरु-भक्ति-स्वरूप श्रद्धा के द्वारा बुद्धि में विकास होने का भी समय आ गया, श्रद्धा-द्वारा लौकिक सामर्थ्य उत्पन्न हो आया, गिरि को एक ही क्षण में यह सब हो गया। आचार्य ने गुरु-भक्ति का माहात्म्य दिखाने के लिये, शिष्यों की बुद्धिमत्ता और विद्याभिमान को दूर करने के लिये और ऐसे अबोध मनुष्य की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये इत्यादि बताने के लिये मन ही मन गिरि को सब विद्या-प्राप्ति का आशीर्वाद दिया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आशीर्वाद देने वाले के बल पर ही अभीष्ट की सिद्धि होती है और आशीर्वाद ग्रहण करने वाले के बल पर भी कभी कभी वह उद्देश्य सिद्ध होता है, यहाँ पर दोनों ही योग्य थे। सुतरां अनादि काल का हृदयांधकार दूर हो गया। अनादिकाल का अंधकार एक दम दीपक के प्रज्वलित होते ही नष्ट हो जाता है। यहाँ पर भी वैसा ही हुआ। गिरि गुरु कृपा से ब्रह्म-विद्या का अधिकारी बन गया। गिरि की हृदय कंदरा में ब्रह्मविद्या का प्रकाश जगमगाने लगा। गिरि उसी क्षण तोटक छन्द में एक गुरु-माहात्म्य सूचक स्तोत्र की रचना करता हुआ आचार्य के वस्त्र लिये हुवे आचार्य के सम्मुख आया। सब गिरि के मुख से ऐसा अपूर्व स्तोत्र सुन कर चमत्कृत हो गये। जो मनुष्य कभी संस्कृत का वाक्य उच्चारण तक नहीं कर सकता था, उसके मुख से ऐसा स्तोत्र! इससे अधिक आश्चर्य का विषय क्या होगा? देखते-देखते गिरि ने आकर आचार्य के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शिष्यगण सब खड़े होकर हाथ जोड़े हुए आचार्य की स्तुति करने लगे, "भगवन्! हमारे ऊपर प्रसन्न होवें।" किसी ने कहा, "हे गुरो! हमारे प्रति भी गिरि के सदृश कृपा करें।" किसी ने कहा, "भगवन्! आप की ही कृपा के बल से गिरि आज कृतार्थ हो गया, आप के सिवाय हमारी गति नहीं।" कोई २ तो भगवान शंकराचार्य के चरण-कमलों पर मस्तक रख कर इसी प्रकार प्रार्थना करने लगे। आचार्य ने स्नेह और आशीर्वाद सब को दे कर कहा, "शिष्यगण! तुम भी गिरि के सदृश

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रद्धा सम्पन्न होवो। श्रद्धा से ही एकाग्रता होती है, श्रद्धा से मन की चंचलता नष्ट होती है, उसी से चित्त शुद्ध होता है। एकाग्र मन होने पर जिस विषय का भी ध्यान करोगे, उसी विषय का विशेष ज्ञान उदय होगा। विस्मृति, संशय, किंवा भ्रम फिर नहीं रहेंगे। हे शिष्य गण! श्रद्धा ही सब विद्याओं का मूल है। एक मात्र श्रद्धा ही पूर्ण मात्रा में होने पर फिर कोई न्यूनता नहीं रहती। जिन साधन-चतुष्टय के होने पर मनुष्य वेदान्त का अधिकारी बनता है, उन में से कुछ भी बाकी नहीं रहता।" ऐसा कह कर आचार्य ने गिरि के मस्तक को स्पर्श करके आशीर्वाद दिया और पास में बैठने को कहा। फिर गिरि के पास बैठने पर आचार्य ने उस पर दया की दृष्टि से देखते हुए कहा, "गिरि! तुम असीम गुरु भक्ति के बल से आज सब विद्याओंके आधार बन गए हो, तुम्हारी गुरु-भक्ति जगत में आदर्श बनेगी।

गिरि ने मस्तक झुका कर आचार्य का आशीर्वाद ग्रहण किया। पद्मपाद सुरेश्वर, हस्तामलक प्रभृति सभी ने गिरि को प्रणाम किया और अन्य शिष्यों ने गिरि की पद-धूल ली। गिरि का अब पहले जैसा भाव नहीं रहा। उसके मुख मर आज एक अपूर्व आनन्द की हंसी थी। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' उस हंसी में फूटा निकलता था। सभी कहने लगे, "धन्य गिरि! तुम्हारी गुरु भक्ति और आज हम धन्य हैं कि ऐसे आचार्य और ऐसे गुरु-भक्त बन्धु हम को मिले हैं।" सब दर्शक और शृङ्गेरी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के निवासी सभी विस्मय-युक्त हो गये। सभी के मुख से आचार्य की महिमा की बात सुन पड़ती थी। शृङ्गेरी एक बड़े आनंद का क्षेत्र बन गया। तदन्तर एक शुभ दिन देख कर आचार्य ने गिरि को संन्यास-मंत्र से दीक्षित किया और गिरि का नाम तब से तोटकाचार्य विख्यात हुआ।

(७) गुरुभक्त एकलव्य की कथा।

हिरण्यधनु नामक निषादराज का पुत्र एकलव्य धनुर्वेद सीखने के लिये कौरवों और पाण्डवों के गुरु वीर्यवान द्रोणाचार्य के पास गया। धर्मज्ञ और शास्त्रों के ज्ञाता द्रोणाचार्य ने 'यह निषाद-पुत्र है' यह निश्चय करके उसे शिष्य नहीं बनाया, परन्तु द्रोणाचार्य में दृढ भक्ति रखने वाले एकलव्य ने विनय और भक्तिपूर्वक अपना मस्तक झुकाकर नमन करके द्रोणाचार्य की चरण वन्दना की और जंगल में जाकर द्रोणाचार्य की मिट्टी की एक प्रतिमा बनाकर उस में गुरु-बुद्धि रख कर नियमपूर्वक एकाग्र चित्त से धनुर्वेद सीखने लगा। श्री गुरु में उस की परम श्रद्धा और एकाग्रता होनेसे उसी मृत्तिका की मूर्ति से अस्त्रों का छोड़ना, वापस बुलाना और चढ़ाना इत्यादि सब क्रियायें उसे अतिशय सहज होने लगीं, अर्थात् वह मृण्मयी मूर्ति ही चेतन-रूपवत् उस को धनुर्विद्या का शिक्षण देने लगी।

तदन्तर किसी समय शत्रुमर्दन करने वाले कुरुपाण्डवगण द्रोणाचार्य की आज्ञा से रथों पर सवार होकर शिकार के लिये

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाहर गये। उन के साथ एक मनुष्य शिकार के लिये जाल इत्यादि लिये हुवे और एक कुत्ता साथ में लिये उनके पीछे २ चलने लगा। पश्चात् जब वे कौरव-पाण्डव उसी जंगल में अपना २ कार्य करने के लिये इधर उधर घूम रहे थे, तब उन के पीछे आने वाला वह कुत्ता दृष्टि से अलक्षित होकर निषाद-पुत्र एकलव्य की तरफ चला गया और उसको कृष्णवर्ण मैला कुचैला काला चमड़ा धारण किये हुवे और जटाधारी देखकर उसके सन्मुख दौड़ा और ऊँचे स्वर से भौंकने लगा, तब निषाद-पुत्र एकलव्य ने अस्त्र-प्रयोग की कुशलता दिखाकर जल्दी से उस भौंकते हुवे कुत्ते के मुख में एक ही साथ सात बाण मारे। कुत्ता बाणों से भरे मुख सहित पाण्डवों के पास लौट आया। वीर पाण्डवों को कुत्ते की वह हालत देखकर अतिशय आश्चर्य हुआ और सभी अस्त्रों के प्रयोग करने वाले के उस लक्ष्य-नैपुण्य तथा कुत्ते के शब्दरोध को देख कर बड़े लज्जित हुए और सर्वतो भाव से उसकी प्रशंसा करने लगे। फिर पाण्डवगण ने उस अस्त्र-प्रयोग करने वाले की खोज में जाते २ देखा कि वह निरन्तर बाण चला रहा है। पाण्डवों ने उस विकराल-मूर्ति निषाद-पुत्र को न पहचान कर पूछा, 'आप कौन हैं', किस के पुत्र हैं?' उनके उत्तर में एकलव्य ने कहा कि हे वीरगण! मैं निषादाधिपति हिरण्यधनु का पुत्र द्रोणाचार्य का शिष्य होकर धनुर्वेद सीखने में नियत रूप से परिश्रम कर रहा हूँ। तदन्तर पाण्डव-गण वापस लौट कर द्रोणाचार्य के पास उपस्थित हुए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और वह सब अद्भुत वृत्तान्त जैसा देखा था, वैसा वर्णन करने लगे।

अर्जुन ने प्रणयवश एकान्त में द्रोणाचार्य से कहा, "हे गुरुदेव! एक वार पहले आपने मुझे आलिङ्गन करके प्रीति-पूर्वक कहा था कि हमारा कोई शिष्य तुझ से उत्कृष्ट नहीं होगा तब क्योंकर वीर्यवान निषादाधिपति का पुत्र आपका शिष्य होकर मुझ से ही नहीं, वरन सारे लोक में श्रेष्ठ है।"

इसके पश्चात् द्रोणाचार्य अर्जुन को साथ लेकर एकलव्य के पास गये और देखा कि वह धनुष हाथ में लिये सदा बाण चलाता रहता है। उधर एकलव्य ने अपने गुरु द्रोणाचार्य को अपनी ओर आते देखकर उनके पास जाकर चरण-स्पर्श-पूर्वक भक्ति के साथ भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया, फिर यथाविधि पूजन करके अपने को उनका शिष्य बताकर परिचय दिया और हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़ा हो गया।

द्रोणाचार्य ने एकलव्य से कहा, "हे वीर! यदि तुम हमारे शिष्य हो तो तुम हम को गुरु दक्षिणा दो।" एकलव्य ने सानंद कहा, "भगवन्! आज्ञा कीजिये, क्या वस्तु प्रदान करूँ? ब्रह्मवित्तम! आप मेरे गुरु हैं, गुरु को मुझे कोई भी वस्तु अदेय नहीं है।" उसके उत्तर में द्रोणाचार्य ने कहा, "यदि अवश्य देने की इच्छा रखते हो तो हम को गुरु-दक्षिणा में अपने दाहने हाथ का अँगूठा दे दो।" एकलव्य सदा ही सत्य-प्रेमी था

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस लिये आचार्य द्रोण के उन दारुण वचनों को सुन कर प्रफुल्ल वदन से ही अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करने में किसी प्रकार का विचार न करके उसने अपने दाहने हाथ के अँगूठे को अस्त्र से काट कर गुरु को प्रदान कर दिया। तदनन्तर एकलव्य ने बची उँगलियों से ही वाण चलाना आरंभ किया, परन्तु पूर्ववत् तेजी से वाण चलाने में समर्थ न हो सका।

॥ इति ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्रंथकर्ता के अन्य ग्रंथ

१. योगवाणी (बंगला)	मूल्य	२)
२. श्री गुरुवाणी (बंगला)	मूल्य	१॥)
३. जप साधना (बंगला)	मूल्य	१॥)
४. गुरुवाणी (हिन्दी)	मूल्य	१॥)
५. योगवाणी (हिन्दी)	मूल्य	२)
६. Who Am I (अंग्रेजी)	मूल्य	॥।)

मिलने का पता :—

मैनेजर,

श्री सिद्ध योगाश्रम

छोटी गैबी,

बनारस।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi